6-3

नाडी-परीक्षा



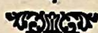
चौखम्भा ओरियन्टालिया

वाराणसी (भारत)

॥ श्रीः ॥

जयकृष्णदास आयुर्वेद ग्रन्थमाला

३



रावणकृता

नाडी-परीक्षा

'वैद्यप्रभा' भाषाटीका समुपेता

व्याख्याकार

डॉ० इन्द्रदेव त्रिपाठी

आयुर्वेदाचार्य, बी. आई. एम. एस., डी. एस. सी. (आ०)

भूतपूर्व चिकित्साधिकारी (उ० प्र०)

6/-



चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ३२

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

संस्करण : द्वितीय, १९८२

मूल्य : रु० 6-००



इसी लेखक की

नाडी-विज्ञानम्

द्वि० संस्करण

मूल्य रु० ३-००



अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्भा भारती अकादमी

आकर ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

फोन : ६३३५४

मुद्रक—श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी–२२१००१

आत्म-निवेदन

वैद्य समाज में नाड़ी-परीक्षा का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है और इस परीक्षा से निर्णीत रोग की चिकित्सा करने में बड़ी सुविधा होती है। आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है। इसके आद्य प्रवर्तक ब्रह्मा हैं और इसका क्रम तभी से चला आ रहा है जो शिष्य-परम्परा के द्वारा अक्षुण्ण विद्यमान है। आजकल तो साधन उपलब्ध होने से आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थ लिपिबद्ध हो चुके हैं और होते जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक नाड़ी-परीक्षा उसी शृङ्खला में है। यद्यपि प्राचीन चिकित्साग्रन्थों में नाड़ी-परीक्षा-सम्बन्धी विस्तृत वर्णन नहीं मिलता जिसके आधार पर मध्यवर्ती नाड़ी-परीक्षाविषयक उपलब्ध साहित्य के साथ परम्परा का निर्वाह हो सके, किन्तु स्वतन्त्र ग्रन्थों में रावणकृत नाडी-परीक्षा, कणादकृत नाड़ी-विज्ञान एवं कुछ संहिता-ग्रन्थों-भाव-प्रकाश, शाङ्गधर-संहिता, योगरत्नाकर आदि में नाड़ी-सम्बन्धी वर्णन विस्तार से किया गया है। जिससे नाड़ी-परीक्षा की महत्ता अधिक बढ़ गई है। प्राचीन ग्रन्थों में धमनी को जीव का साक्षी माना गया है। मन्या एवं मातृका-स्पन्दन जीवन एवं सप्राणता का परिचायक माना जाता है। महायानसम्प्रदाय एवं सिद्धसम्प्रदाय का चिकित्सा में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सम्भव है कि चिकित्सा में रसौसधि का प्रयोग तथा व्याधि-विज्ञान में नाड़ीपरीक्षा का प्रयोग विशेष महत्त्वपूर्ण रहा हो। जो भी हो, नाड़ीपरीक्षा का स्रोत आयुर्वेद है जिसको वैद्यों ने योगशास्त्र के द्वारा प्रख्यात होने पर अपना लिया था और तब से वह निदान का एक अङ्ग बन गया है। इसके बाद अनुभव के आधार पर जीवन के सम्बन्ध में नाड़ी-परीक्षा द्वारा बहुत-सी बातें जानी जाने लगीं हैं। यहाँ तक की रोग के साध्य, असाध्य एवं याप्य-आदि दशा, रोगों का लक्षण एवं रोगी की मृत्यु का समय, यहाँ तक कि घड़ी-पल का भी ज्ञान नाड़ी के द्वारा साध्य हो गया है; किन्तु इस बात को कह देना

जितना सरल है उतना ही करके दिखा देना कठिन है। केवल नाड़ी-परीक्षा की पुस्तक पढ़ लेने से ही ज्ञान नहीं हो सकता। इसके लिए अनुभव की आवश्यकता है और यह अनुभव गुरु-परम्परा के द्वारा एवं अपनी क्रियाशीलता पर आधारित होता है। शास्त्रीय ज्ञान एवं अपनी भी अनुभव नाड़ी-ज्ञान की सफलता की ओर ले जाता है।

रावण-कृत "नाडी-परीक्षा" नामक पुस्तक में नाड़ी की गति के द्वारा जीवन के सभी बातों का ज्ञान कराने का प्रयास किया गया है। यह अति प्राचीन एवं सर्वशास्त्र-पारंगत रावण का बनाया हुआ है। यह रावण कौन है; राम-परम्परा का या अन्य; यह अभी अनुसन्धानीय है। इसके अनुवाद में यह ध्यान रखा गया है कि भाषा सरल एवं व्यावहारिक हो। इसके साथ-साथ यूनानी एवं डाक्टरी मत के अनुसार नाड़ी-परीक्षा दे देने से इसकी महत्ता और बढ़ गई है। आशा है इस ग्रन्थ से चिकित्सक एवं छात्र वर्ग समुचित लाभ उठायेंगे। यदि इसमें कहीं कुछ त्रुटि रह गई हो तो रसग्राही विज्ञजन अपनी सुसम्मति भेजकर सुधार करने में सहयोग करेंगे। इसके लिये लेखक कृतज्ञ रहेगा।

बहुत दिनों से यह अभिलाषा बनी रही कि नाड़ी-परीक्षा का एक ऐसा संस्करण किया जाय कि नाड़ी के द्वारा रोगों का ज्ञान करने में सरलता हो। हर्ष एवं सन्तोष का अनुभव हो रहा है कि इसकी परिपूर्णता श्रीविश्वनाथजी की अनुकम्पा से हुई है। अतः यह विश्वेश्वर विश्वनाथजी के पादारविन्दों में सादर समर्पित है।

इसके अनुवाद में मेरे मित्र डा० सन्ना उल्लाह साहब अदीब कामिल, बी. आई. एम. एस. का यूनानी नाड़ी-विज्ञान के खोज करने में बहुत सहयोग रहा है अतः वे महानुभाव धन्यवादार्ह हैं। समय के प्रभाव से अनेक कठिनाईयों के होते हुये भी चौखम्भा ओरियन्टालिया के योग्य प्रकाशक ने अतिशीघ्र प्रकाशन किया है इसके लिये वे सपरिवार धन्यवाद के पात्र हैं।

चैत्रशुक्ल प्रतिपदा
संवत् २०३३

निवेदक—
इन्द्रदेव त्रिपाठी

भूमिका

(द्वितीय संस्करण)

नाड़ी विज्ञान क्षेत्र में सबसे प्राचीन रावणकृत "नाडी-परीक्षा" है। इसमें त्रिदोष नाड़ी विवेचन के साथ रोगों में होने वाली नाड़ी गति का स्वरूप एवं साध्यासाध्य रोगों में नाड़ीगति का विशेष विचार किया गया है वस्तुतः नाड़ीपरीक्षा मनन एवं अनुभव का विषय है। चिरकाल तक सावधानी पूर्वक अभ्यास किया जाय और गतियों का वर्गीकृत मनन एवं अभ्यास पूर्वक हृदयङ्गम किया जाय तो नाड़ीपरीक्षण में सफलता मिलती है। आधुनिक वैज्ञानिक भी त्रिदोष मीमांसा के सामने सिर झुका देते हैं।

आज इसके ऊपर भले ही छींटाकसी की जाय किन्तु इसकी प्राचीनता की यही साक्षी है कि चिकित्सक के पास आते ही रोगी हाथ फैलाकर नाड़ी द्वारा रोग निदान करने के लिये आग्रह करते हैं। प्राचीन चिकित्सापद्धति में देश-विदेश कहीं भी नाड़ी परीक्षण का बहुत महत्त्व है। हम इस बात को मानने के लिये नहीं तैयार हैं कि "नाड़ीपरीक्षा" अनार्ष है। चरक संहिता में सूत्ररूप में दिग्दर्शन करा दिया गया है और इसी के अध्ययन-मनन के आधार पर स्वर्गीय सर्वश्री श्री सत्यनारायण की नाड़ी विज्ञान सर्वतोत्कृष्ट रहा है।

नाड़ीपरीक्षा की ओर आयुर्वेदीय-स्नातकों का ध्यान आकृष्ट हो रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप प्रथम संस्करण की समाप्ति होते देर नहीं

लगी। पाठकों के आग्रह से द्वितीय संस्करण का प्रकाशन शीघ्र ही करना पड़ रहा है। प्रकाशक की तत्परता सराहनीय है।

आशा है पाठक नाड़ी-परीक्षण सम्बन्धी अपने अनुभवों का आदान-प्रदान करते रहेंगे जिससे नाड़ी विज्ञान विषयक नवीन अनुभवों का समावेश किया जा सके।

अन्त में प्रकाशक एवं सम्पादक का आभारी हूँ जिन्होंने यथा शीघ्र प्रकाशन एवं सम्पादन कर पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

वैशाख कृष्ण त्रयोदशी

दिनांक २२–८–८२

विनीत

इन्द्रदेव त्रिपाठी

विषय-सूची

परिशिष्ट–१

परिशिष्ट–२

॥ श्रीः ॥

श्रीरावणकृत

नाडी-परीक्षा

'वैद्यप्रभा' भाषाटीका समुपेता



मङ्गलाचरणम्—

अगणितमहिमायै साधकानन्ददायै
सकलविभवसिद्ध्यै दुर्गतिध्वान्तहन्त्र्यै ।
अमृतजलधिजायै जातरूपात्ममूर्त्यै
मधुरिपुवनितायै चेन्दिरायै नमोऽस्तु ॥ १ ॥

अगणितमहिमावाली, साधना में लगे हुये पुरुषों को आनन्द देने वाली, सम्पूर्ण विभवों (सम्पत्तियों) को प्राप्त कराने वाली, दुर्गतिरूपी अन्धकार को दूर करने वाली, अमृत समुद्र से उत्पन्न स्वर्ण के समान स्वरूप वाली श्री विष्णु भगवान् की पत्नी श्री लक्ष्मी को नमस्कार है ॥ १ ॥

रोगिणः शरीरे परीक्ष्यस्थानान्याह—

गदक्रान्तस्य देहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत् ।
नाडीं मूत्रं मलं जिह्वां शब्दस्पर्शदृगाकृतीः ॥ २ ॥

रोगियों के शरीर में परीक्ष्य स्थान—रोग पीड़ित शरीर के आठ स्थानों (विषयों) की परीक्षा[1] करे। वे आठ विषय निम्नलिखित हैं-(१) नाड़ी, (२) मूत्र, (३) मल (विष्ठा), (४) जिह्वा, (५) शब्द, (६) स्पर्श, (७) नेत्र तथा (८) आकृति (चेष्टा) ॥ २ ॥

---

१. प्रातः कृतसमाचारः कृताचारपरिग्रहम्
सुखासीनः सुखासीनं परीक्षार्थमुपाचरेत् ।
वातं पित्तं कफं द्वन्द्वं सन्निपातं रसं त्वसृक्
साध्यासाध्यविवेकञ्च सर्वं नाडी प्रकाशयेत् ॥

नाडीपरीक्षाफलम्—

रुग्णस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दीपः पदार्थानिव जीवनाडी।
प्रदर्शयेद्दोषजनिस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च॥ ३॥

नाड़ी परीक्षा का फल—जीव साक्षिणी नाड़ी मुग्ध तथा मूर्च्छित रोगी के एक दोष (वात, पित्त, कफ), दो दोष (वात-पित्त, वात-कफ तथा पित्त-कफ) समस्तदोष (तीनों दोष) से उत्पन्न स्वरूप को दिखा देती है अर्थात् बता देती है। जैसे, दीपक अन्धकार में छिपे हुए पदार्थों को प्रत्यक्ष करा देता है॥ ३॥

अस्ति प्रकोष्ठगा नाडी-मध्ये काऽपि समाश्रिता।
जीवनाडीति सा प्रोक्ता नन्दिना तत्त्ववेदिना॥ ४॥
अङ्गुष्ठमूलसंस्था तु विशेषेण परीक्ष्यते।
सा हि सर्वाङ्गगा नाडी पूर्वाचार्यैः सुभाषिता॥ ५॥

जीव नाड़ी का लक्षण—प्रकोष्ठ (कलाई) में स्थित नाड़ियों के मध्य में एक विशेष प्रकार की नाड़ी रहती है जिसको जीवनाड़ी कहते हैं, ऐसा नाडीतत्त्व के विशेषज्ञ नन्दि नाम के आचार्य का कहना है। अंगुष्ठ मूल में स्थित नाड़ी की विशेष प्रकार से दोष परिज्ञान के लिये परीक्षा की जाती है। वह नाड़ी शरीर के सभी अंगों में व्याप्त है अर्थात् शरीर के सम्पूर्ण अंगों से सम्बन्ध रखने वाली है, ऐसा प्राचीन आचार्यों का कथन है॥ ४-५॥

[1]नाडीपरीक्षाविधिः—

एकाङ्गुलं परित्यज्याधस्तादङ्गुष्ठमूलतः।

---

१. नाड़ी परीक्षा के कुछ सामान्य नियम—

(१) नाड़ी परीक्षा करने वाले चिकित्सक तथा रोगी को सावधान होकर एवं शान्त स्थान में बैठ कर नाड़ी परीक्षा करनी चाहिए। यदि कहीं से चल कर आना पड़ा हो तो थोड़ा बैठ कर विश्राम कर लेना चाहिए। किसी भी प्रकार के परिश्रम करने के बाद बिना पूर्ण विश्राम हुए नाड़ी परीक्षा नहीं करानी चाहिए।

(२) रोगी को बैठाकर या लिटाकर अवस्था के अनुसार परीक्षा करनी चाहिए। पहुँचे के अंगूठे के नीचे एक अंगुल छोड़ कर तीन अंगुलियों (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका) से नाड़ी परीक्षा करें। बीच-बीच में

यत्नवांस्तां परीक्षेत[1] ह्यभ्यासादेव लक्ष्यते ॥ ६ ॥

अङ्गुलियों से नाड़ी दबाने के बाद छोड़ कर नाड़ी की गति का अनुभव करें। पहुँचे की नाड़ी देखना सम्भव न हो तो कनपटी एवं बाहुमूल आदि स्थान में नाड़ी की परीक्षा करनी चाहिए।

(३) दोनों हाथों की नाड़ी की परीक्षा करना उचित है क्योंकि कभी-कभी देखा जाता है कि दोनों हाथों की नाड़ी की गति में अन्तर रहता है। अतः दोनों हाथों की नाड़ियों से ही रोग निर्णय करना चाहिए।

(४) स्त्री की नाड़ी दाहिने हाथ की अपेक्षा बायें हाथ की नाड़ी अधिक स्पष्ट होती है; इसीलिये प्राचीन काल से ही स्त्रियों के बायें हाथ की नाड़ी की ही परीक्षा करने की परम्परा है।

(५) घबड़ाहट एवं भयभीत की अवस्था में रोगी को बात चीत के द्वारा शान्त एवं विश्वस्त कर नाड़ी देखना प्रारम्भ करना चाहिए, क्योंकि उक्त अवस्था में नाड़ी के चञ्चल होने के कारण रोग का ज्ञान होना कठिन हो जाता है। बालक की नाड़ी परीक्षा करते समय उसको गोदी में बैठाकर एवं अनेक प्रकार का प्रलोभन देकर शान्त कर लेना चाहिए। सोने की अवस्था में नाड़ी देखना ठीक होता है।

(६) नाड़ी देखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रकोष्ठीय सम्बन्धी-धमनी के ऊपर कहीं दबाव तो नहीं है या कोई बन्धन तो नहीं है? दबाव होने से नाड़ी का ज्ञान ठीक-ठीक नहीं होता है।

सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य क्षुत्तृष्णातपशीलिनः।
व्यायामश्रान्तदेहस्य सम्यङ्नाडी न बुध्यते ॥

स्नान तथा भोजन करने के तुरन्त बाद, भूख-प्यास की दशा में, धूप में घूमने एवं व्यायाम करने के तुरन्त वाद अच्छी तरह नाड़ी का ज्ञान नहीं होता है। अर्थात् इन अवस्थावों में नाड़ी न देखना और न दिखाना चाहिए।

१. सव्येनरोगधृतिकूर्परभागभाजाऽऽ-
पीड्याय दक्षिणकराङ्गुलिकात्रयेण।
अङ्गुष्ठमूलमधिपश्चिमभागमध्यं
नाडीं प्रभञ्जनगतिं सततं परीक्षेत् ॥

अङ्गुष्ठमूलभागे या धमनी जीवसाक्षिणी।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः॥ ७॥
स्त्रीणां भिषग्वामहस्ते वामपादे च यत्नतः।
(पुंसां दक्षिणभागे च नाडी विद्याद्विशेषतः।)
गुल्फस्याधोऽङ्गुष्ठभागे पादे त्वङ्गुष्ठमूलतः॥ ८॥
एकाङ्गुलं परित्यज्य मणिबन्धे परीक्षयेत्।
अधः करेण निष्पीड्य त्रिभिरङ्गुलिभिर्मुहुः॥ ९॥
लघुवामेन हस्तेन चालम्ब्यातुरकूर्परम्।
स्फुरणं नाडिकायास्तु शास्त्रेणानुभवैर्निजैः॥
संप्रदायेन वा यत्नात्परीक्षेत भिषक्तमः॥ १०॥

नाड़ी परीक्षा करने की विधि—अंगूठा के मूल के नीचे एक अंगुल छोड़कर वैद्य यत्नपूर्वक नाड़ी की परीक्षा करें। यह नाड़ी परीक्षा अभ्यास से ही की जा सकती है। नाड़ी ज्ञान के पण्डित अङ्गुष्ठ के मूल भाग में जो जीवन की साक्षी स्वरूपा धमनी है उसकी चेष्टा (स्पन्दन) से शरीर के सुख-दुःख का ज्ञान करें। वैद्य स्त्रियों के बायें हाथ एवं पैर में तथा पुरुषों के दाहिने हाथ एवं पैर में यत्नपूर्वक विशेष प्रकार से नाड़ी का ज्ञान करें। पैर के अङ्गुष्ठ भाग में गुल्फ के नीचे अंगुष्ठमूल से एक अंगुल छोड़कर तथा मणिबन्ध में (अङ्गुष्ठमूल से एक अङ्गुल छोड़कर) नाड़ी की परीक्षा करें। तीन अङ्गुलियों से बार-बार उक्त स्थान को हल्के हाथ से दबा कर तथा बायें हाथ से रोग के केहुनी को थाम कर शास्त्र तथा अपने-अपने अनुभव एवं गुरु सम्प्रदाय के निर्देश के अनुसार उत्तमवैद्य यत्नपूर्वक नाड़ी के स्पन्दन की परीक्षा करें॥ ६–१०॥

वातपित्तकफवहानां नाडीनां स्थानानि—

आदौ वातवहा नाडी मध्ये वहति पित्तला।
अन्ते श्लेष्मविकारेण नाडिकेति त्रिधा मता॥ ११॥
वातेऽधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले।
पित्तेव्यक्ताऽथ मध्यायां, तृतीयाङ्गुलिगा कफे॥ १२॥

वात पित्त तथा कफ को वहन करने वाली नाड़ियों का स्थान—मणिबन्ध में अङ्गुष्ठ मूल से नीचे एक अङ्गुल छोड़ कर प्रारम्भ में वातवहा[1] नाड़ी, मध्य में पित्तवहा नाड़ी तथा अन्त में कफवहा नाड़ी चलती हुई प्रतीत होती है। वातदोष अधिक होने पर तर्जनी अङ्गुल के नीचे प्रतीत होती है। पित्त दोष अधिक होने पर मध्यमा अङ्गुली के नीचे तथा कफदोष अधिक होने पर अनामिका अङ्गुल के नीचे नाड़ी की गति प्रतीत होती है ॥ ११-१२ ॥

द्विदोषत्रिदोषाधिक्ये नाडीनां स्थानानि—

तर्जनीमध्यमामध्ये वातपित्ताधिके स्फुटा।
तर्जन्यनामिकामध्ये व्यक्ता वातकफे भवेत् ॥ १३ ॥
मध्यमाऽनामिकामध्ये स्फुटा पित्तकफे भवेत्।
अंगुलित्रितयेऽपि स्यात्प्रव्यक्ता सन्निपाततः ॥ १४ ॥

दो दोष तथा तीन दोषों के अधिक होने पर नाड़ी के स्थान—वात एवं पित्त के अधिक होने पर तर्जनी और मध्यमा अङ्गुली के नीचे, वात-कफ दोष के अधिक होने पर तर्जनी तथा अनामिका अङ्गुली के नीचे और पित्त-कफ दोष के अधिक होने पर मध्यमा तथा अनामिका अङ्गुली के नीचे नाड़ी की गति की प्रतीति होती है एवं त्रिदोष की अधिकता होने पर तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका तीनों अङ्गुलियों के नीचे नाड़ी की गति प्रतीत होती है ॥ १३-१४ ॥

वक्रादिभेदेन वातादीनां नाडीगतिवर्णनम्—

वाते वक्रगतिर्नाडी चपला पित्तवाहिनी ॥ १५ ॥
स्थिरा श्लेष्मवती प्रोक्ता सर्वलिङ्गा च सर्वगा।
श्लेष्मणा स्तिमिता स्तब्धा मिश्रा मिश्रैस्तु लक्षयेत् ॥ १६ ॥

वक्र, चञ्चल तथा स्थिर भेद से वात-आदि के नाड़ी गति का वर्णन—वात-दोष के अधिक होने पर नाड़ी की गति वक्र अर्थात् टेढ़ी-मेढ़ी, पित्त दोष के अधिक होने पर चञ्चल गति तथा कफ दोष के अधिक होने पर स्थिर गति प्रतीत होती

---

१. वाताधिका वहेन्मध्ये त्वग्रे वहति पित्तला।
अन्ते च वहते श्लेष्मा मिश्रिते मिश्रलक्षणा ॥ (ना. वि.)
आदौ च वहते पित्तं मध्ये श्लेष्मा तथैव च।
अन्ते प्रभञ्जनो ज्ञेय सर्वशास्त्रविशारदैः ॥ (ना. वि.)

है एवं त्रिदोष की अधिकता से वक्र, चञ्चल तथा स्थिर तीनों प्रकार की-समय भेद से-प्रतीत होती है। अथवा कफ से स्तिमिता (चिपचिपापन) तथा स्तब्धता ली हुई नाड़ी की गति होती है और दोषों के मिलने पर पूर्वोक्त मिले लक्षण प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥

वातादीनामाधिक्ये नाडीविशेषगतिमाह—

वातोद्रेके गतिं कुर्याज्जलौकासर्पयोरिव ।
पित्तोद्रेके तु सा नाडी काकमण्डूकयोर्गतिम् ।
हंसस्येव कफोद्रेके गतिं पारावतस्य वा ॥ १७ ॥

वात-आदिकदोषों के अधिक होने पर नाडी की विशेष गति—वात दोष की अधिकता होने पर नाड़ी की गति जोंक तथा सर्प की तरह टेढ़ी मेढ़ी होती है। पित्त दोष की अधिकता में काक तथा मेढक के समान उछल-उछल कर नाड़ी चलती है तथा कफ दोष की अधिकता में हंस तथा कबूतर की तरह मन्द गति से नाड़ी चलती है ॥ १७ ॥

विमर्श—पहले जो वात की गति वक्र, पित्त की गति चञ्चल तथा कफ की गति स्थिर होती हैं, ऐसा श्लोक १४–१६ में कहा गया है। प्रस्तुत श्लोक से उन्हीं गतियों की पुष्टि हो रही है। क्योंकि जोंक तथा सांप की गति वक्र अर्थात् टेढ़ी-मेढ़ी होती ही है। काक एवं मेढ़क की गति उछल कूद कर चलने से चञ्चल होती है और हंस तथा कबूतर की मन्द गति अर्थात् स्थिर गति होती है। इस प्रकार दोनों गतियों का सामञ्जस्य बन जाता हैं। इनका अनुभव अभ्यास करते रहने पर होता है।

त्रिदोषाधिक्ये नाडीविशेषगतिमाह—

नाडी धत्ते त्रिदोषे तु गतिं तित्तिरलावयोः ।
काचिन्मन्दगा नाडी कदाचिद्वेगवाहिनी ॥ १८ ॥

त्रिदोष की अधिकता होने पर नाड़ी की विशेष गति—त्रिदोष की अधिकता में नाड़ी की गति तीतर तथा लाव पक्षी की तरह कभी मन्द तथा कभी तीव्र हो जाती है। अर्थात् तीनों दोषों की गति के समान समय भेद से होती है ॥ १८ ॥

द्विदोषाधिक्ये नाडीविशेषगतिमाह—

दोषद्वयोद्भवे रोगे विज्ञेया सा भिषग्वरैः ॥ १९ ॥

दो दोषों की अधिकता में नाड़ी की विशेष गति—दो दोषों की अधिकता होने पर श्रेष्ठ वैद्यों को सर्पादि की गतियों के अनुसार गति समझनी चाहिए। अर्थात् वात-पित्त की निश्चित अधिकता में सर्प तथा काक की गति समय भेद से प्रतीत होती है। वात-कफ की निश्चित अधिकता में सर्प तथा हंस की तरह गति समय भेद से प्रतीत होती है और पित्त-कफ की अधिकता में काक तथा हंस की गति की भाँति समय भेद से प्रतीत होती है ॥ १९ ॥

असाध्यनाडीलक्षणम्—

क्वचिन्मन्दां क्वचित्तीव्रां त्रुटितां वहते क्वचित्।
क्वचित्सूक्ष्मां क्वचित्स्थूलां नाड्यसाध्यगदे गतिम् ॥ २० ॥
त्वगूर्ध्वं दृश्यते नाडी प्रवहेदतिचञ्चला।
असाध्यलक्षणा प्रोक्ता पिच्छिला चातिचञ्चला ॥ २१ ॥

असाध्य नाड़ी की गति का लक्षण—असाध्य रोग के रोगी की नाड़ी कभी मन्द, कभी तीव्र तथा कभी-कभी त्रुटित (रुक-रुक कर), कभी सूक्ष्म तथा कभी स्थूल गति से चलती है। यदि नाड़ी की गति चर्म के ऊपर स्पष्ट प्रतीत हो और अत्यन्त चञ्चलगति हो तो असाध्य रोग का लक्षण है। इसके अतिरिक्त अति पिच्छिल तथा चञ्चल गति से युक्त नाड़ी प्रतीत हो तो भी असाध्य[1] समझना चाहिए ॥ २०–२१ ॥

निर्दोषाया नाड्या लक्षणम्—

अङ्गुष्ठादूर्ध्वसंलग्ना समा च वहते यदि।
निर्दोषा सा च विज्ञेया नाडीलक्षणकोविदैः ॥ २२ ॥

निर्दोष नाड़ी का लक्षण—यदि नाड़ी की गति अंगूठे के ऊपर की ओर चलती हो और उसकी गति समभाव से अर्थात् न मन्द हो और न शीघ्र हो तो निर्दोष नाड़ी समझनी चाहिए। ऐसा नाड़ी के गति को जानने वाले वैद्यों का मत है ॥२२॥

---

१. महा दाहेऽपि शीतत्वं शीतत्वे तापिता शिरा।
नाना विधगतिर्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ (नाड़ी दर्पण)

जिस मनुष्य के देह में दाह अधिक हो किन्तु नाड़ी शीत प्रतीत हो और शरीर अत्यन्त शीतल हो तथा नाड़ी उष्ण प्रतीत हो एवं जिसकी नाड़ी अनेक प्रकार की गति से चलती हो तो रोगी की मृत्यु हो जाती है इसमें सन्देह नहीं है।

प्राणहारिण्या नाड्या लक्षणम्—

स्थित्वा स्थित्वा वहति या सा नाडी मृत्युदायिनी।
अतिशीता च या नाडी रोगिणः प्राणहारिणी ॥ २३ ॥

मृत्यु कारक नाड़ी का लक्षण—जो नाड़ी रुक-रुक कर चलती है वह मृत्यु देने वाली है और जो नाड़ी अत्यधिक शीतल होती है वह भी प्राणनाश[1] करने वाली होती है ॥ २३ ॥

ज्वरादिषु नाडीलक्षणम्—

उष्णा वेगवती नाडी ज्वरकोपे प्रजायते।
उद्वेगक्रोधकामेषु, भयचिन्तोदये तथा ॥ २४ ॥
भवेत्क्षीणगतिर्नाड़ी ज्ञातव्या वैद्यसत्तमैः।
क्षीणधातोश्च मन्दाग्नेर्भवेन्मन्दतरा ध्रुवम् ॥ २५ ॥

ज्वर-आदि रोगों में चलने वाली नाड़ी की गति का लक्षण—ज्वर का प्रकोप होने पर नाड़ी का स्पर्श उष्ण तथा वेग पूर्वक चलने वाली होती है। उद्वेग, क्रोध, काम, भय तथा चिन्ता होने पर नाड़ी की गति क्षीण प्रतीत होती है; ऐसा उत्तम वैद्यों को समझना चाहिए। जिनकी धातुयें (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र) क्षीण हो गई हों तथा जिसकी अग्नि मन्द पड़ गई हो उसकी नाड़ी निश्चय ही अत्यन्त मन्द चलती हैं ॥ २४–२५ ॥

रक्तपूर्णादीनां नाडीनां लक्षणानि—

गुर्वी सोष्णा च रक्तेन पूर्णा नाडी प्रजायते।
सामा गुर्वी भवेन्नाड़ी मन्दाऽसृक्पूर्णिताऽपि च ॥ २६ ॥

रक्त से पूर्ण नाड़ी के लक्षण—रक्त से पूर्ण नाड़ी चलने में भारी तथा उष्ण स्पर्श वाली प्रतीत होती है तथा आम से पूर्ण नाड़ी चलने में भारी और रक्त से पूर्ण नाड़ी की गति भी मन्द प्रतीत होती है ॥ २६ ॥

दीप्ताग्निसुखिनोर्नाडीलक्षणे—

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता।
सुखिनस्तु भवेन्नाडी स्थिरा बलवती तथा ॥ २७ ॥

---

१. अत्युच्चका स्थिरात्यन्तं या चेयं मांसवाहिनी।
या च सूक्ष्मा च वक्रा च तामसाध्यां विनिर्दिशेत् ॥ (वा. पि.)

प्रदीप्त अग्नि वाले तथा सुखी मनुष्य की नाड़ी का लक्षण—प्रदीप्त जाठराग्नि वाले मनुष्य की नाड़ी हल्की तथा वेग युक्त चलती है और सुखी मनुष्य की नाड़ी स्थिर भाव से चलती है तथा बलवती होती है ॥ २७ ॥

क्षुधितादीनां नाडीलक्षणम्—

चपला क्षुधितस्य स्यात्स्थिरा तृप्तस्य सा भवेत् ।
स्थिरा श्लेष्मवती नाडी वहति प्रदरे तथा ॥ २८ ॥

भूख पीड़ित एवं तृप्त मनुष्य के नाड़ी का लक्षण—भूख से पीड़ित मनुष्य की नाड़ी चञ्चल होती है तथा भोजन एवं पेय पदार्थ से तृप्त मनुष्य की नाड़ी स्थिर भाव से चलती है। प्रदर रोग में नाड़ी स्थिर भाव से चलती हुई कफयुक्त की तरह प्रतीत होती है ॥ २८ ॥

अजीर्णादौ नाडीलक्षणम्—

अजीर्णे तु भवेन्नाडी कठिना परितो जडा ।
चपला रसजे दीर्घा पित्ते वेगवती तथा ॥ २९ ॥

अजीर्ण सम्बन्धी रोग होने पर नाड़ी का लक्षण—अजीर्ण रोग में नाड़ी कठिन तथा चारो तरफ से जड़ की भाँति प्रतीत होती है। रसज अर्थात् रसाजीर्ण होने पर चञ्चल तथा दीर्घ (तीनों अङ्गुलियों के नीचे प्रतीत होने वाली) नाड़ी की गति प्रतीत होती है तथा पित्त की प्रबलता में नाड़ी की गति वेग युक्त होती है ॥ २९ ॥

क्षुधितादीनां नाड़ीलक्षणानि—

प्रसन्ना च द्रुता शीघ्रा क्षुद्भिर्नाडी प्रवर्त्तते ।
ज्वरे तीव्रा प्रसन्ना च नाडी वहति पित्ततः ॥ ३० ॥
स्निग्धा रसवती प्रोक्ता रसे मूर्च्छाविधायिनी ।
भाविरोगप्रबोधाय स्वस्थे नाडी परीक्षणम् ॥ ३१ ॥

भूख आदि से पीड़ित व्यक्तियों की नाड़ी का लक्षण—भूख लगने पर नाड़ी की गति प्रसन्न तथा शीघ्र चलने वाली होती है। ज्वर में पित्त की अधिकता होने पर तीव्र गति युक्त तथा निर्मल नाड़ी होती है। रसाधिक्य होने पर नाड़ी स्निग्ध रस युक्त तथा मूर्च्छा करने वाली होती है। भविष्य में होने वाले रोग की जानकारी के लिये स्वस्थ पुरुष के नाड़ी की भी परीक्षा करनी चाहिए ॥ ३०-३१ ॥

असाध्यवल्लक्षितायामपि नाड्या साध्यत्वकथनम्—

भारप्रहारमूर्च्छाभयशोकविसूचिकाभवा नाडी।
संमूर्च्छिताऽपि गाढं पुनरपि सा जीवितं भजते ॥ ३२ ॥

नाड़ी के असाध्य लक्षणादि रहने पर भी साध्य होना—भार, लाठी आदि का प्रहार, मूर्च्छा, भय, शोक तथा विसूचिका द्वारा आक्रान्त होने से पुरुष की नाड़ी बिलकुल बन्द होने पर भी वह जीवित रहता है। ऐसी अवस्था में असाध्य नहीं समझना चाहिए ॥ ३२ ॥

मेहादिरोगेषु नाडीलक्षणानि—

मेहेऽर्शसि मलाजीर्णे शीघ्रं तु स्पन्दते धरा ॥ ३३ ॥

प्रमेह—आदि रोग में नाड़ी के लक्षण—प्रमेह, अर्श (ववासीर) तथा मलाजीर्ण में नाड़ी का स्पन्दन शीघ्र होता है ॥ ३३ ॥

गर्भिण्या नष्टगर्भिण्याश्च नाड़ीलक्षणम्—

गुर्वीं वातवहां नाडीं गर्भेण सह लक्षयेत्।
पित्तवायोस्तत्र वाच्या लघुना गौरवेण च।
आमपक्वविभागाश्च दिनमासादिकं बुधैः॥
सैव पित्तवहा लघ्वी नष्टगर्भा वदेच्च ताम् ॥ ३४ ॥

गर्भिणी तथा नष्ट गर्भिणी के नाड़ी का लक्षण—गर्भवती स्त्री की नाड़ी वातवाहिनी (वक्रा) तथा गुरु प्रतीत होती है। उस समय क्रमशः पित्त और वात वाहिनी नाड़ी की लघुता तथा गुरुता से आमत्व तथा पक्वत्व का परिज्ञान एवं दिन तथा मास आदि का ज्ञान चिकित्सकों को करना चाहिए। यदि गर्भवती को नाड़ी पित्तवाहिनी (चपला) तथा लघु हो तो गर्भ नष्ट हो गया है; ऐसा कहना चाहिए ॥ ३४ ॥

नाडीस्फुरणाभावविषयाः—

दोष्पीडावक्रतायां च प्रहारे त्रसनेन च।
व्यायामेऽट्टाट्टहासे च नैति स्फुरणतां धरा ॥ ३५ ॥

नाड़ी स्पन्द न होने के कारण—बाहु में पीड़ा तथा उसके टेढ़े होने पर, लाठी आदि के चोट लगने पर, भय होने पर, व्यायाम करने तथा बल लगाकर हसने पर नाड़ी का स्पन्दन नहीं होता है ॥ ३५ ॥

मांसवाहिन्यादीनां नाडीनां लक्षणानि—

गम्भीरा या भवेन्नाडी सा भवेन्मांसवाहिनी ॥ ३६ ॥
दीर्घा कृशा वातगतिर्विषमा वेपते धरा ।
जीवघ्नो वाऽसमैश्चिह्नैर्व्याकुलाऽजीर्णसश्रया ॥ ३७ ॥

मांस वाहिनी आदि नाड़ी के लक्षण—मांस वाहिनी नाड़ी गम्भीर होती है। यदि नाड़ी दीर्घ हो (तीनों अङ्गुलियों को स्पर्श करती हो), सूक्ष्म हो, वात की गति अर्थात् टेढ़ी-मेढ़ी गति वाली हो और विषम गतिवाली अर्थात् कभी तीव्र, कभी मन्द, कभी भारी तथा कभी हल्की चलती हो तो वह प्राण नष्ट करने वाली होती है या जिसमें वातादिकों के लक्षण विषमभाव से हों वह नाड़ी भी मृत्यु कारक होती है। अधिक अजीर्ण होने से व्याकुल हुए की तरह नाड़ी चलती है ॥३६–३७॥

शीतार्त्तादीनां नाडीलक्षणानि—

शीतार्त्तस्यार्द्रगात्रस्य चिरात्सूक्ष्माऽथ मन्थरा ।
शयानस्य बलोपेता नाडी स्फुरणमञ्चति ॥ ३८ ॥

शीतपीड़ित व्यक्ति के नाड़ी का लक्षण—शीत से पीड़ित या भींगते हुए पुरुष की नाड़ी सूक्ष्म तथा मन्थर गति वाली होती है। सोये हुए पुरुष की नाड़ी बलवती होकर स्पन्दन करती है ॥ ३८ ॥

स्वस्थानस्थेषु वातादिदोषेषु नाडीलक्षणानि—

किञ्चिदाभुग्नगतिका स्वस्थाने वहतीरणे ।
सूक्ष्मरूपा स्फुटा शीता स्वस्थानस्थे कफे तथा ॥
पित्ते स्वस्थानगे तद्वत्प्रबला सरला चला ॥ ३९ ॥

वातादिदोष के सामान्य स्थिति में रहने पर नाड़ी के लक्षण—वात के अपने स्थान में रहने पर नाड़ी थोड़ी वक्र गति से चलती है, कफ के अपने स्थान में रहने पर नाड़ी सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट गति वाली एवं स्पर्श में शीतल होती है और पित्त के अपने स्थान में रहने पर नाड़ी प्रबल, सरल एवं चञ्चलगति वाली होती है ॥ ३९ ॥

कुपितेषु वातादिषु नाडीलक्षणानि—

अनृजुर्वातकोपेन चण्डा पित्तप्रकोपतः ।
सरला श्लेष्मकोपेन नाडी दोषैः पृथक् स्मृता ॥ ४० ॥

वातादि दोष के कुपित होने पर नाड़ी के लक्षण—वात दोष के प्रकुपित होने पर नाड़ी की गति टेढ़ी-मेढ़ी, पित्तदोष के प्रकुपित होने पर प्रचण्ड रूप से उछलती हुई तथा कफ दोष के प्रकुपित होने पर नाड़ी की गति सरल होती है। इस प्रकार अलग अलग दोषों से नाड़ी की गति कही गई है ॥ ४० ॥

हीनकफादिषु नाडीलक्षणानि—

कफे हीनेऽधिकं वातगतिं वहति नाडिका।
हीने वाते कफे चाति स्वल्पे पित्ते चिरात्स्फुटा ॥ ४१ ॥

कफादि के क्षीण होने पर नाड़ी के लक्षण—कफ के क्षीण होने पर नाड़ी वात की गति (वक्र गति) से अधिक चलती है तथा वात के क्षीण तथा कफ के अधिक होने एवं पित्त के स्वल्प होने पर नाड़ी की गति देर से स्पष्ट होकर चलती है ॥ ४१ ॥

सहजवातजादीनां नाड़ीनां लक्षणानि—

सौम्या सूक्ष्मा स्थिरा मन्दा नाडी सहजवातजा।
ईषच्चपलवक्रा च कठिना वातपित्तजा ॥ ४२ ॥
स्थूला च चञ्चला शीता मन्दा स्याच्छ्लेष्मवातजा।
सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाडी पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ॥ ४३ ॥

स्वाभाविक वातादि नाड़ी के लक्षण—वात की स्वाभाविक अवस्था होने पर नाड़ी सौम्य, सूक्ष्म, स्थिर तथा मन्द वेग से चलती है। वात-पित्त की नाड़ी थोड़ी चञ्चल तथा वक्र गति वाली एवं कठिन होती है। कफ-वात की नाड़ी स्थूलस्पर्श वाली, चञ्चल, शीतल तथा मन्द गति, सूक्ष्मस्पर्श वाली तथा स्थिर होती है ॥ ४२-४३ ॥

कटुकादिपदार्थभक्षणात् पित्ताद्याधिक्ये नाडीलक्षणानि—

पित्ताधिक्ये च चपला कटुकादेश्च भक्षणात्।
निरन्तरं खरं रुक्षमन्नमश्नाति वातलम् ॥ ४४ ॥
रुक्षा वातोल्वणा तस्य नाडी स्यात्पिण्डसन्निभा।
नाडी तन्तुसमा मन्दा शीतला श्लेष्मदोषजा ॥ ४५ ॥

कटुकादिपदार्थ खाने से पित्तादि के बढ़ने पर नाड़ी के लक्षण—कड़वे आदि पदार्थ के खाने से पित्त की वृद्धि होने पर नाड़ी की गति चञ्चल होती है। जो व्यक्ति हमेशा खर, रूखा तथा वातकारक अन्न खाता है उसकी नाड़ी रूखी एवं पिण्ड (गांठ-गांठ सी) सी चलती हुई प्रतीत होती है। कफ के प्रकोप से नाड़ी कमलतन्तु की तरह अत्यधिक सूक्ष्म होकर मन्दगति वाली तथा स्पर्श में शीतल प्रतीत होती है ॥ ४४–४५ ॥

रिरंसुप्रभृतीनां नाडीलक्षणानि—

रिरंसोरुज्झितरतेश्चलतोऽपि च वातवत् ॥ ४६ ॥
रुद्धवेगस्य बालस्य शल्यविद्धस्य पित्तवत् ।
निद्रालोर्मेदुरस्यापि कफवत्तृप्तदृप्तयोः ॥ ४७ ॥

रमण करने की इच्छा करने वाले व्यक्तियों की नाड़ी के लक्षण—मैथुन करने की इच्छा होने पर तथा मैथुन से निवृत्त होने पर तथा रास्ता चलकर आने पर मनुष्य की नाड़ी वात की गति की तरह वक्र गति से चलती है। मलमूत्रादि के वेग को रोकने वाले, बालक एवं शल्य (कांटा) आदि से विधे हुए की नाड़ी पित्त की तरह चञ्चल चलती है। निद्रा, से युक्त, मेदस्वी, अन्नादि से तृप्त तथा दृप्त (अहंकारी) व्यक्तियों की नाड़ी कफ की तरह मन्द गति से चलती है ॥४६–४७॥

मलाजीर्णमलशेषयोर्नाडीलक्षणे—

समा सूक्ष्मा ह्यणुस्पन्दा मलाजीर्णे प्रकीर्त्तिता ।
विषमा कठिना स्थूला मलशेषात्प्रकीर्त्तिता ॥ ४८ ॥

मलाजीर्ण तथा मलशेष वाले व्यक्तियों की नाड़ी का लक्षण—मल के परिपाक न होने पर समान भाव से हलका स्पन्दन वाली सूक्ष्म नाड़ी की गति होती है और मल के शेष रह जाने पर अर्धमलावरोध की अवस्था में नाड़ी की गति विषम, कठिन तथा स्थूल होती है ॥ ४८ ॥

रक्तप्रभृतिहेतुतो नाडीगतिवर्णनम्—

रक्तादजीर्णाद्वमनाद्विरेकाद्वीर्यक्षयाद्रक्तस्रुतेनिबन्धात् ।
संमूर्च्छनाद्यैर्जठराग्निमान्द्यान्नाडीवहेत्तन्तुचला च जन्तोः ॥ ४९ ॥

रक्त-आदि विकृति के कारण नाड़ी की गति का वर्णन—रक्तदोष, अजीर्ण, वमन, विरेचन, वीर्य क्षय, रक्तपात, मूर्च्छा तथा मन्दाग्नि होने से मनुष्य की नाड़ी तन्तु की तरह सूक्ष्म तथा चञ्चल चलती है ॥ ४९ ॥

निरामकफजाशीतदोषजयोर्नाड्योर्लक्षणे—

निरामा सूक्ष्मगा ज्ञेया कफेन परिपूरिता।
नाडी तन्तुसमा मन्दा शीतला शीतलदोषजा ॥ ५० ॥

निराम कफ जन्य एवं शीत दोष के कारण नाड़ी का लक्षण—कफ से पूर्ण आम दोष से रहित नाड़ी सूक्ष्म रूप से चलती है। शीत दोष से युक्त नाड़ी तन्तु के समान सूक्ष्म, मन्द तथा शीत स्पर्श वाली चलती है ॥ ५० ॥

कफपित्तादिषु नाडीलक्षणानि—

मन्दं मन्दं मिताहारे कफपित्तसमन्विता।
बहुदाहकरे रक्ते प्लावयन्ती विशेषतः ॥ ५१ ॥

कफ-पित्तादि में नाड़ी का लक्षण—कफ-पित्त से युक्त नाड़ी थोड़ा आहार करने पर मन्द-मन्द (धीरे-धीरे) चलती है। अधिक जलन करने वाले रक्त के होने पर नाड़ी विशेष रूप से प्लावित करती हुई चलती है ॥ ५१ ॥

रक्तपूर्णदोषेषु नाडीलक्षणानि—

मध्ये करे वहेन्नाडी यदि दीर्घा पुनर्द्रुता।
तदा नूनं मनुष्यस्य रुधिरापूरिता मला ॥ ५२ ॥

रक्त पूर्ण दोषों में नाड़ी के लक्षण—यदि हाथ के मध्य में नाड़ी दीर्घ (तीनों अङ्गुलियों के नीचे स्पर्श करती हुई) प्रतीत होती हुई शीघ्र गामिनी हो तो मनुष्य के दोष निश्चय ही रक्त पूर्ण होते हैं ॥ ५२ ॥

वातज्वरादिषु नाडीलक्षणानि—

वक्रा च चपला शीतस्पर्शा वातज्वरे भवेत्।
द्रुता च सरला दीर्घा शीघ्रा पित्तज्वरे भवेत् ॥ ५३ ॥
मन्दा च सुस्थिरा शीता पिच्छिला श्लेष्मके भवेत्।
मृणालसरला दीर्घा नाडी पित्तज्वरे वहेत् ॥ ५४ ॥

शीघ्रमावहतेऽमन्दं मलाजीर्णात्प्रकीर्तिता।
स्थूला च कठिना शीघ्रं स्पन्दते तीव्रतमारुते ॥ ५५ ॥

वात-पित्त ज्वरादि में नाड़ी के लक्षण—वातज्वर में नाड़ी वक्र (टेढ़ी-मेढ़ी), चञ्चल, शीतस्पर्श वाली होती है। पित्तज्वर में नाड़ी शघ्रगामिनी, सरल (एक रेखा में), दीर्घ (तीनों अङ्गुलियों से स्पर्श होने वाली) प्रतीत होती है। कफ-ज्वर में मन्द, स्थिर, शीतस्पर्श से युक्त तथा पिच्छिल (चिपचिपा) प्रतीत होती है। पितज्वर में नाड़ी मृणाल (कमलनाल) की तरह सरल (सीधी रेखा में) तथा दीर्घ (तीनों अङ्गुलियों से) प्रतीत होने वाली प्रतीत होती है। पित्त-ज्वर के आमदोष के न पचने पर अमन्दगति से शीघ्रतापूर्वक नाड़ी चलती है और तीव्र वातज रोग में नाड़ी दोषयुक्त होने से मोटी तथा कठिन स्पन्दन करती हुई शीघ्र चलती है ॥ ५३–५५ ॥

ज्वरादीनां सद्य आगमने नाडीलक्षणम्—

पुरा मन्दा च शनकैश्चण्डतां याति नाडिका।
ज्वरं शैत्यं वेपथोर्वा सम्बन्धं व्रजति द्रुतम् ॥ ५६ ॥
इयमैकाहिकादीनां व्याधीनां जननी मता।
भूतग्रहे सिराऽलक्ष्या भाविन्यैकाहिके ज्वरे ॥ ५७ ॥

ज्वरादि के शीघ्र आगमन में नाड़ी का लक्षण—यदि नाड़ी पहले मन्द-मन्द चलती हुई धीरे-धीरे प्रचण्ड (तीव्र) होकर चलने लगे तो मनुष्य को शीघ्र ही ज्वर जाड़ा लगना तथा कपकपी होने की सम्भावना रहती है। यह पूर्वोक्त लक्षण ऐकाहिक आदि ज्वर को उत्पन्न करने वाला है। भूतग्रहजन्य ऐकाहिक आदि ज्वर होने की सम्भावना में नाड़ी से दोषों का यथार्थ ज्ञान नहीं होता है ॥५६-५७॥

द्विदोषकोपतो नाडीलक्षणम्—

कदाचिन्मन्दगमना कदाचिद्वेगवाहिनी।
द्विदोषकोपतो ज्ञेया हन्ति च स्थानविच्युता ॥ ५८ ॥

दो दोषों के प्रकोप होने पर नाड़ी का लक्षण—दो दोषों के प्रकोप होने पर नाड़ी की गति कभी मन्द तथा कभी वेग से चलती है; ऐसा समझना चाहिए। यदि अपने स्थान से हट कर नाड़ी चले तो मनुष्य को मार देती है ॥ ५८ ॥

रक्तपित्तकफजकासयोः श्वासे च नाडीलक्षणम्—

रक्तपित्ते वहेन्नाडी मन्दा च कठिना ऋजुः ।
श्लेष्मकासे स्थिरा मन्दा श्वासे तीव्रगतिर्भवेत् ॥ ५६ ॥

रक्तपित्त, कफजकास तथा श्वास में नाड़ी का लक्षण—रक्तपित्त में नाड़ी की गति मन्द, कठिन तथा सरल होती है। कफजकास में नाड़ी की गति मन्द तथा श्वास में नाड़ी की गति तीव्र होती है ॥ ५९ ॥

यक्ष्मणि मदात्यये च नाडीलक्षणम्—

नाडी नागगतिश्चैव रोगराजे प्रकीर्त्तिता ।
मदात्यये च सूक्ष्मा स्यात्कठिना परितो जडा ॥ ६० ॥

यक्ष्मा तथा मदात्यय में नाड़ी का लक्षण—यक्ष्मा (टी. बी.) रोग में नाड़ी की गति हाथी के समान मन्द गति वाली होती है। मदात्य रोग मे नाड़ी की गति सूक्ष्म, कठिन तथा चारो तरफ से जकड़ी हुई की तरह प्रतीत होती है ॥६०॥

अर्शोरोगातिसारादिषु नाडीलक्षणम्—

अर्शोरोगे स्थिरा मन्दा क्वचिद्वक्रा क्वचिदृजुः ।
अतिसारे तु मन्दा स्याद्धिमकाले जलौकवत् ॥ ६१ ॥

अर्श, अतिसार आदि रोग में नाड़ी का लक्षण—अर्श रोग में नाड़ी की गति स्थिर तथा मन्द होती है और कभी-कभी वक्र (टेढ़ी-मेढ़ी) तथा कभी-कभी सरल चलती है। अतिसार रोग में नाड़ी की गति मन्द होती है तथा शीतकाल में नाड़ी की गति जोंक की गति के समान वक्र होती है ॥ ६१ ॥

मांसवृद्धिग्रहण्योर्नाडीलक्षणे—

मांसवृद्धौ तु सा धत्ते ज्वरातीसारयोर्गतिम् ।
मृतसर्पसमा नाडी ग्रहणीरोगमादिशेत् ॥ ६२ ॥

मांस वृद्धि तथा ग्रहणी रोग में नाड़ी के लक्षण—मांस वृद्धि होने पर नाड़ी की गति ज्वर तथा अतिसार के समान होती है। यदि नाड़ी मरे साँप की तरह शान्त अर्थात् बहुत क्षीण एवं मन्द मन्द चलती हुई कठिनाई से प्रतीत हो तो मनुष्य को ग्रहणी रोग से पीड़ित समझें ॥ ६२ ॥

मूत्राघातमुहुर्भेदप्रमेहेषु नाडीलक्षणानि—

मूत्राघाते मुहुर्भेदे स्फुरणे संप्लुता भवेत्।
प्रमेहे च जडा सूक्ष्मा मुहुराप्यायते सिरा॥ ६३॥

मूत्राघात, बार-बार पखाना होने तथा प्रमेह रोग में नाड़ी का लक्षण—मूत्राघात, बार-बार पाखाना होने पर नाड़ी की गति मेढक की तरह कूद-कूद कर चलती है, प्रमेह रोग में नाड़ी की गति जड़ता युक्त, सूक्ष्म तथा बार-बार बढ़ती हुई प्रतीत होती है॥ ६३॥

पाण्डुकुष्ठरोगयोर्नाडीलक्षणे—

पाण्डुरोगे चला तीव्रा दृष्टादृष्टविहारिणी।
कुष्ठे तु कठिना नाडी स्थिरा स्यादप्रवृत्तिका॥ ६४॥

पाण्डु तथा कुष्ठ रोग में नाड़ी की गति—पाण्डुरोग में नाड़ी की गति चञ्चल, तीव्र तथा कभी दिखाई देने वाली तथा कभी दिखाई न देने वाली अर्थात् अज्ञात होने वाली होती है। कुष्ठ रोग में नाड़ी की गति कठिन, स्थिर तथा प्रवृत्तिरहित होती है॥ ६४॥

वातरोगकफयोर्नाडीलक्षणे—

वातरोगे स्थिरा च स्यादावृते सर्वलक्षणा।
बलासे स्फुरणोपेता सूक्ष्मा द्रुतगतिर्भवेत्॥ ६५॥

वात तथा कफ रोग में नाड़ी का लक्षण—वात जन्य रोग में नाड़ी की गति स्थिर होती है किन्तु पित्त-कफादि से आवृत होने पर वात रोग में पित्तादि के सभी लक्षण मिलते हैं। कफजन्य रोग में नाड़ी की गति सूक्ष्म स्पन्दन से युक्त प्रतीत होती है॥ ६५॥

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु नाडीलक्षणम्—

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु यथादोषबलेषु च।
विज्ञाय लक्षणं तेषां भिषग्ब्रूयाद्धरागतिम्॥ ६६॥

गले से ऊपर के विकारों में नाड़ी के लक्षण—ऊर्ध्व जत्रु (गले से ऊपर के

अङ्गों के विकार) के रोगों में दोष एवं बल के अनुसार लक्षण समझकर नाड़ी की गति बतायें ॥ ६६ ॥

शोणिताश्रितस्य नाडीलक्षणम्—

अर्केन्दुकठिना सोष्णा स रोगी शोणिताश्रितः ॥ ६७ ॥

रक्त विकार में नाड़ी का लक्षण—जिसके दोनों हाथ की नाड़ी कठिन तथा उष्ण स्पर्श वाली होती हैं वह रोगी रक्त विकार से युक्त होता है ॥ ६७ ॥

सन्निपाते मृत्युसूचक नाडीलक्षणम्—

सन्निपातधरा नाडी शीतोष्णाभ्यां गतौ स्फुटा ।
अतितन्वी सुवेगा च सन्निपाते प्रशाम्यति ।
शीतला स्निग्धवेगा च रोगिणस्तस्य मारिका ॥ ६८ ॥
स्थित्वा स्थित्वा चलन्ती या सा स्मृता प्राणनाशिनी ।
अतितीक्ष्णा च शीता च जीवितं हन्त्यसंशयम् ॥ ६९ ॥

सन्निपात में मृत्युसूचक नाड़ी का लक्षण—सन्निपात में नाड़ी की गति कभी शीत तथा कभी उष्ण एवं स्पष्ट प्रतीत होती हो और कभी अत्यन्त सूक्ष्म तथा कभी वेग वाली प्रतीत होती हो तो रोगी मर जाता है। शीलत तथा स्निग्ध वेग वाली नाड़ी भी रोगी को मारने वाली है। जो नाड़ी रुक-रुक कर चलती है वह भी रोगी को मारने वाली होती है। अत्यन्त तीक्ष्ण तथा शीत स्पर्श वाली नाड़ी निःसन्देह रोगी के जीवन को नष्ट कर देती है ॥ ६८—६९ ॥

द्वितीयदिवसे मरणख्यापिकाया नाड्या लक्षणम्—

शीघ्रा नाडी प्रलापान्ते दिनार्धेऽग्निसमो ज्वरः ।
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये मरणं ध्रुवम् ॥ ७० ॥

दूसरे दिन मृत्यु को बताने वाली नाड़ी का लक्षण—प्रलाप के अन्त में नाड़ी शीघ्र चलती हो तथा दिन के अर्ध भाग में अग्नि के समान तापयुक्त ज्वर हो तो रोगी का एक दिन जीवन शेष रहता है तथा दूसरे दिन अवश्य ही मर जाता है ॥ ७० ॥

मृत्युकाले नाडीलक्षणानि—

मृत्युकाले भवेन्नाडी जीर्णा डमरुकोपमा ।
तन्तुमन्दोपरिष्टात्तु ह्यधस्ताद्वक्रतां गता ॥ ७१ ॥

मृत्यु के समय नाड़ी के लक्षण—मृत्यु के समय में नाड़ी की गति जीर्ण (क्षीण) होकर डमरू के समान हो जाती है तथा ऊपर की ओर तन्तु की तरह सूक्ष्म, मन्द-मन्द गति वाली तथा नीचे की ओर वक्र गति वाली होती है ॥७१॥

असाध्यनाडीलक्षणम्—

याऽत्युच्चकाऽस्थिरा या च या चेयं मांसवाहिनी।
याऽतिसूक्ष्मा च वक्रा च तामसाध्यां विनिर्दिशेत ॥ ७२ ॥

असाध्य नाड़ी का लक्षण—जो नाड़ी अत्यधिक ऊँची हो अर्थात् बाहर से दिखाई पड़ती हो तथा जो अत्यन्त स्थिर यानी मन्द गति से चलती हो और जो मांस भक्षण करने के बाद की गति वाली नाड़ी के सदृश चलती हो या दण्ड सदृश कठिन एवं मोटी चलती हो तथा सूक्ष्म गति वाली या वक्र गति वाली हो तो उस नाड़ी को सन्निपात में असाध्य कहना चाहिए अर्थात् इस प्रकार की नाड़ी वाला रोगी असाध्य होता है ॥ ७२ ॥

द्वितीयदिवसे मरणख्यापिकाया नाड्या लक्षणम्—

स्थिरा नाडी मुखे यस्य विद्युद्द्युतिरिवेक्ष्यते।
दिनैकं जीवितं तस्य द्वितीये मरणं ध्रुवम् ॥ ७३ ॥

सन्निपात में दूसरे दिन मृत्यु बतानेवाली नाड़ी का लक्षण—जिस सन्निपात के रोगी की नाड़ी की गति स्थिर होती हुई अंगूठे की मूल यानी तर्जनी के नीचे बिजली के समान एकाएक स्पन्दन करती है या जिसकी नाड़ी स्थिर हो तथा रोगी के मुख पर बिजली के समान झलक प्रतीत होती हो तो वह एक दिन जीवित रहता है। दूसरे दिन उसकी निश्चय ही मृत्यु हो जाती है ॥ ७३ ॥

सन्निपातेऽसाध्यनाडीलक्षणम्—

मन्दं मन्दं कुटिलकुटिलं व्याकुलं व्याकुलं वा
स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी याति नाशं च सूक्ष्मा।
नित्यस्थानात्स्खलति पुनरप्यङ्गुलिं संस्पृशेत्सा
भावैरेवं बहुतरविधैः सन्निपातादसाध्या ॥ ७४ ॥

सन्निपात रोग में असाध्य नड़ी का लक्षण—जिस सन्निपात के रोगी की नाड़ी मन्द-मन्द (धीरे-धीरे), शिथिल-शिथिल (कृश), व्याकुल-व्याकुल

(उद्वेग की तरह) तथा ठहर-ठहर कर चले और कभी-कभी नाश भी हो जाय तथा सूक्ष्म गतिवाली हो जाय अर्थात् यह न प्रतीत हो कि नाड़ी चल रही है या नहीं एवं नित्य अपने स्थान से (अंगुष्ठ मूल से) खिसक कर कलाई की ऊपर की ओर चली जाय और पुनः अंगुली को स्पर्श करने लगे तो इन सब अनेक प्रकार की नाड़ी की गतिवाला रोगी असाध्य होता है। अर्थात् इस प्रकार की नाड़ी असाध्य रोग का सूचक है ७४ ॥

सन्निपातेऽसाध्यनाडीलक्षणम्—

पूर्वं पित्तगतिं प्रभञ्जनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रतीं
　　स्वस्थानभ्रमणं मुहुर्विधतीं चक्राधिरूढामिव ।
तीव्रत्वं दधती कलापिगतिकां सूक्ष्मत्वमातन्वती
　　नो साध्यां धमनीं वदन्ति मुनयो नाडीगतिज्ञानिनः ॥ ७५ ॥

सन्निपात में असाध्य नाड़ी का लक्षण—सन्निपात रोगी की नाड़ी पहले पित्त की गति (चञ्चल गति) से चले तथा वायु की गति (टेढ़ी मेढ़ी) गति से चले और कफ की गति (मन्द गति से चले। पुनः चक्र के ऊपर चढ़े हुये के सदृश अपने स्थान में भ्रमण करती हुई अर्थात् विपरीत गति को धारण करती हुई, तीव्रता को धारण करती हुई, कभी सूक्ष्म, मोर की गति को धारण करती हुई नाड़ी की गति चले तो इस प्रकार की नाड़ी की गतिवाले रोगी को नाड़ी गति को जाननेवाले मुनिगण असाध्य कहते हैं। अर्थात् नाड़ी कभी पित्त की गति, कभी वात की गति, कभी कफ की गति तथा कभी दोषों की उलटी गति को धारण करने वाली, कभी-कभी चक्र पर चढ़े हुए की तरह ऊपर-नीचे भ्रमण करने वाली, कभी तीव्र एवं कभी सूक्ष्म होने वाली नाड़ी की गति जिस रोगी की होती है उस रोगी को असाध्य कहना चाहिए ॥ ७५ ॥

सन्निपातजनाडीलक्षणम्—

काष्ठकुट्टो यथा काष्ठं कुट्टयत्यतिवेगतः ।
स्थित्वा स्थित्वा चलति या सन्निपातेन जायते ॥ ७६ ॥

सन्निपातज नाड़ी का लक्षण—जिस प्रकार से कठफोरनी रुक-रुक कर अत्यन्त वेग से काठ को फोड़ती है उसी प्रकार रुक-रुक कर वेग से अङ्गुली को स्पर्श करने

वाली नाड़ी चलती हो तो सन्निपात रोग समझना चाहिए। अर्थात् इस प्रकार की नाड़ी सन्निपात रोग में चलती है ॥ ७६ ॥

सन्निपातेऽसाध्यनाडीलक्षणम्—

कम्पते स्पन्दते तन्तुवत्पुनश्चाङ्गुलिं स्पृशेत्।
तामासाध्यां विजानीयान्नाडीं दूरेण वर्जयेत् ॥ ७७ ॥

सन्निपात रोग में असाध्य नाड़ी का लक्षण—जिस सन्निपात के रोगी की नाड़ी कम्पन करे और तन्तु के सदृश सूक्ष्म रूप से फड़के तथा बार-बार अङ्गुली को स्पर्श करे तो उस रोगी को असाध्य समझ दूर से ही छोड़ दें। अर्थात् इस प्रकार चलनेवाली नाड़ी रोग की असाध्यता को बताती है। अतः ऐसी नाड़ी वाले रोगियों की चिकित्सा न करें ॥ ७७ ॥

सप्तरात्रमध्ये मृत्युसूचिकाया नाड्या लक्षणम्—

मुखे नाडी वहेत्तीव्रा कदाचिच्छीतला वहेत्।
आयाति पिच्छिलः स्वेदः सप्तरात्रं न जीवति ॥ ७८ ॥

सात रात्रि तक मृत्यु सूचित करने वाली नाड़ी का लक्षण—जिस रोगी की नाड़ी मुख में अर्थात् तर्जनी अङ्गुली के नीचे तीव्र गति से चले और कभी शीतस्पर्श वाली हो जाय तथा पसीना चिपचिपा आता हो तो वह रोगी सात रात्रि तक जीवित नहीं रहता है। अर्थात् सात रात्रि के अन्दर ही मर जाता है ॥ ७८ ॥

पक्षं यावज्जीवितकालसूचिकाया नाड्या लक्षणम्—

देहे शैत्यं मुखे श्वासो नाडी तीव्राऽतिदाहिका।
मासार्द्धं जीवितं तस्य नाडीविज्ञातृभाषितम् ॥ ७९ ॥

एक पक्ष तक जीवित रहने की सूचना देने वाली नाड़ी का लक्षण—जिसका शरीर ठंडा हो और मुख से श्वास निकलता हो तथा नाड़ी दाह युक्त तीव्र गति से चलती हो तो उस रोगी का जीवन पन्द्रह दिन तक रहता है, ऐसा नाड़ी-विज्ञान के पण्डित कहते हैं ॥ ७९ ॥

त्रिरात्राभ्यन्तरे मृत्युज्ञापिकाया नाड्या लक्षणम्—

मुखे नाडी यदा नास्ति मध्ये शैत्यं बहिः क्लमः।
तन्मुमन्दा वहेन्नाडी त्रिरात्रं न स जीवति ॥ ८० ॥

तीन रात्रि के अन्दर मृत्यु को बताने वाली नाड़ी का लक्षण—जिस रोगी के मुख में यानी तर्जनी अङ्गुली के नीचे नाड़ी की गति न प्रतीत हो और मध्य में शीतल प्रतीत हो तथा शरीर के बाहर गीलापन हो एवं नाड़ी की गति तन्तु के समान सूक्ष्म होकर मन्द चलती हो, वह रोगी तीन रात्रितक जीवित नहीं रहता है। अर्थात् तीन रात्रि के अन्दर ही मर जाता है ॥ ८० ॥

पूर्वं नाडी तु वेगोत्था ततः परदिने यदि।
शीता विहतवेगा स्यात्सन्निपातात्तदा भयम् ॥ ८१ ॥

पहले दिन नाड़ी वेगवती हो और दूसरे दिन शीतस्पर्श से युक्त होती हुई पहले दिन की वेग वाली नाड़ी नष्ट हो जाय तो ऐसे सन्निपात के रोगी की मृत्यु का भय होता है। अर्थात् इस प्रकार की नाड़ी वाला मर जाता है ॥ ८१ ॥

चतुर्थेऽह्नि मृत्युद्योतिकाया नाड्या लक्षणम्—

ज्वरो वह्निसमोऽत्यर्थं भवेत्पूर्वदिने यदि।
निरन्तरं यदा नाडी लवेनैकेन संचरेत्।
मुखस्थाने तु रुग्णस्य चतुर्थे मरणं दिने ॥ ८२ ॥

चौथे दिन मृत्यु को सूचित करने वाली नाड़ी का लक्षण—यदि रोगी को पूर्व दिन में अग्नि के समान तीव्र ज्वर हुआ हो और उसकी नाड़ी केवल तर्जनी के नीचे एक लव से फड़कती हुई निरन्तर चलती रहे तो उस रोगी की चौथे दिन मृत्यु होती है ॥ ८२ ॥

द्वितीयेऽह्नि मृत्युख्यापिकाया नाड्या लक्षणम्—

मुखे त्रुटत्यकस्माच्च न किञ्चिद् दृश्यते यदा।
तदा विद्यात्स रुग्णानां द्वितीये मरणं ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

दूसरे दिन मृत्यु बताने वाली नाड़ी का लक्षण—यदि रोगी की तर्जनी अङ्गुली के नीचे की नाड़ी अकस्मात् टूट कर कुछ भी न प्रतीत हो तो दूसरे दिन उसकी मृत्यु निश्चय है ॥ ८३ ॥

एकदिनमध्ये मृत्युख्यापिकाया नाड्या लक्षणानि—

यदा नाडी हता वेगा स्पन्दते नैव लभ्यते।
तदा दिनस्य मध्ये तु मरणं रोगिणो भवेत् ॥ ८४ ॥

निरन्तरं मुखस्थाने भ्राम्येड्डमरुकोपमा ।
चला नाडी तु रुग्णस्य दिनैकान्मरणं भवेत् ॥ ८५ ॥

एक दिन के मध्य में मृत्यु को बताने वाली नाड़ी का लक्षण—जब रोगी की नाड़ी का वेग नष्ट होकर फड़कता हो और लक्षित न होता हो तो एक दिन में ही रोगी की मृत्यु हो जाती है। यदि रोगी की नाड़ी तर्जनी के नीचे ही डमरू की तरह चञ्चल प्रतीत होती हो तो रोगी की मृत्यु एक दिन में हो जाती है ॥८४-८५॥

असाध्यनाडीलक्षणम्—

अतिसूक्ष्मा पृथक् शीघ्रा सवेगा भरिताऽर्द्रिका ।
भूत्वा भूत्वा म्रियेतैव तदा विद्यादसाध्यताम् ॥ ८६ ॥

असाध्य नाड़ी का लक्षण—जब रोगी की नाडी अत्यन्त सूक्ष्म, अलग-अलग शीघ्र गति वाली, वेग युक्त, गीले होने की भाँति, भार से युक्त एवं इन अवस्थाओं में ही होकर नष्ट हो जाती हो तो उस रोगी को असाध्य समझें ॥ ८६ ॥

स्वस्थस्य दिनत्रयसप्ताहाभ्यां मृत्युसूचिकयोर्नाड्योर्लक्षणे—

स्वस्थस्य तलगा पूर्वं नाडी स्यादप्रपञ्चनात् ॥ ८७ ॥
भूयः प्रपञ्चनात्सूक्ष्मा त्रिदिनैर्म्रियते नरः ।
ऊर्ध्वहस्तं तडिद्वेगा सप्ताहैर्म्रियते नरः ॥ ८८ ॥

स्वस्थ पुरुष की तीन दिन या सप्ताह में-मृत्यु-सूचक नाड़ी का लक्षण—जब स्वस्थ पुरुष की नाड़ी की गति बिना हथेली फैलाये अपने स्थान से नीचे लक्षित हो और पुनः हाथ फैलाने से अपने स्थान पर सूक्ष्म रूप से प्रतीत हो तो उसकी मृत्यु तीन दिन में होती है। यदि हाथ ऊंचा करने पर भी नाड़ी की गति बिजली के समान वेग वाली हो तो मनुष्य की मृत्यु एक सप्ताह में हो जाती है ॥८७-८८॥

अत्यासन्नमृत्योर्लक्षणानि—

शान्ते नाडीवि(प्र)ताने शमनमुपगते चेन्द्रियाणां प्रचारे
सूक्ष्मे वाऽनुष्णरूपां विकृतिमुपगते सर्वथा शीतभावे ।
शून्ये चित्तात्ममार्गे स्फुरणविरहिते नष्टसंज्ञाप्रचारे
सूर्ये चन्द्रात्मसंस्थेऽवगतगुणगणे पञ्चतेयं प्रवाच्या ॥ ८९ ॥

अत्यन्त आसन्नमृत्युव्यक्ति के लक्षण—जब मनुष्य की सम्पूर्ण नाड़ियाँ शान्त हो जाती हैं और इन्द्रियों का कार्य-कलाप भी शान्त हो जाता है या सूक्ष्म रूप से

उन सबों का व्यापार रह जाता है अथवा थोड़ी उष्णता रूप विकार आ जाने पर या सर्वथा शरीर शीतल हो जाने पर, चित्त और आत्मा का मार्ग शून्य हो जाने पर यानी उनका व्यापार शान्त हो जाने पर या स्पन्दन शून्य हो जाने पर, निःसंज्ञ हो जाने पर या दक्षिण नासिका का स्वर बन्द होकर केवल वाम स्वर चलने पर-जब इन सब लक्षणों की प्रतीति होने लगे तब उसकी मृत्यु हो रही है, ऐसा समझना चाहिए ॥ ८९ ॥

अन्यच्च—

नाड्यादिप्रकरः प्रयाति विकृतिं शान्तिं परां सूक्ष्मतां
कान्तिर्याति विपर्ययं च यदि वा हित्वा स्वमार्गोनिलम् ।
अज्ञानेऽपि हि शून्यतामुपगते ज्ञानेन्द्रिये शाम्यति
सूर्याचन्द्रमसौ तथा च पिहिते पञ्चत्वमेति स्फुटम् ॥ ९० ॥

सद्यः मरने वालों का दूसरा लक्षण—नाड़ी आदि का समूह विकृति को प्राप्त हो जाय या शक्ति को प्राप्त हो जाय या नाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म हो जाय और शरीर की कान्ति चली जाय, वायु प्राणवह मार्ग को छोड़कर विपरीत भाव में चली जाय और अज्ञान भी शून्य हो जाय तथा इन्द्रियों के अपने-अपने कार्य कलाप के शान्त हो जाने और दक्षिण एवं वाम नासिका से चलने वाले श्वास के बन्द हो जाने पर मनुष्य की मृत्यु स्पष्ट हो जाती है। अर्थात् इन सब पूर्वोक्त लक्षण से युक्त मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, ऐसा समझना चाहिए ॥ ९० ॥

मृत्युकाले मनुष्याणां देहदशावर्णनम्—

शुष्कोष्ठः श्यावकोष्ठोऽप्यसितरदनखः शीतनासाप्रदेशः
शोणाक्षश्चैकनेत्रो लुलितकरपदः श्रोत्रपातित्ययुक्तः ।
शीतः श्वासोऽथवोष्णः श्वसनसमुदयी शीतगात्रः सकम्पः
सोद्वेगो निष्प्रपञ्चः प्रभवति मनुजः सर्वथा मृत्युकाले ॥ ९१ ॥

मृत्युकाल में मनुष्य की देहदशा का वर्णन—मृत्यु के समय में मनुष्य का ओष्ठ सूख जाता है और काला हो जाता है और दाँत तथा नख भी काले पड़ जाते हैं, नासा प्रदेश शीतल हो जाता है, आँखे लाल हो जाती है, एक आँख की देखने की शक्ति नष्ट हो जाती है, हाथ पैर शिथिल होकर अकर्मण्य हो जाते हैं,

कान झुक जाते हैं, शीत या उष्ण-श्वास प्रश्वास होने लगता है तथा ऊर्ध्व श्वास हो जाता है, शरीर ठंडा हो जाता है और कप-कपी होने लगती है, मनुष्य सर्वथा उद्वेग से युक्त या प्रपञ्चरहित शून्य एवं शान्त हो जाता है ॥ ९१ ॥

विनाशकाले शब्दवहादीनां धमनीनामवस्थावर्णनम्—

पञ्चाभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयन्ति ।
पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ॥ ९२ ॥

मृत्यु के समय में शब्दादिवह धमनियों की अवस्था का वर्णन—आकाश आदि पञ्च महाभूतों (आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी) से उत्पन्न धमनियाँ पञ्चेन्द्रिय (श्रोत्र, चक्षु, जिह्वा, नाक, तथा त्वक् ज्ञानेन्द्रिय एवं मन) वाले आत्मा को इन्द्रियों के अधिष्ठान पाँचो में पाँच बार करके अलग-अलग पहुँचाती हैं और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों एवं पाँचों कर्मेन्द्रियों (हाथ, पाद, लिङ्ग, गुदा, मुख) एवं मन को अपने-अपने विषयों में पहुँचा कर वे ही इन्द्रियाँ मृत्यु काल में पञ्चतत्त्व (आकाशादि भाव) को प्राप्त होती हैं। अपने कारणभूत आकाशादि पञ्च भूतों में विलीन हो जाती हैं। इसी से पञ्चतत्त्व प्राप्त होने को मृत्यु शब्द से कहते हैं।

अन्तकाले नृणां नाड्यादिलक्षणम्—

वातावर्त्तितमानुषेऽतिविषमं संस्पन्दते नाडिका
पित्तस्यैव समागमं न कुरुते मन्दा च मन्दोदये ।
प्राचुर्यं भजते रसाश्रयवशात्क्षीणा रसेनोज्झिता
नीत्वा श्वासमुपैति शान्तिमचलैःस्वैरन्तकाले नृणाम् ॥ ९३ ॥

मृत्यु काल में मनुष्य की नाड़ी का लक्षण—मृत्यु काल में वायु के प्रकोप होने पर मनुष्य की नाड़ी अत्यन्य विषमरूप में चलती है और उसमें पित्त (उष्मा) का सम्बन्ध बिलकुल नहीं रह जाता। कफ की प्रचुरता होने पर नाड़ी की गति मन्द हो जाती है, रस से युक्त होने पर प्रचुरता (तेजी) रहती है और रस के अभाव में क्षीण हो जाती है और श्वास को लेकर शान्त हो जाती है अर्थात् नाड़ियों में रहनेवाली चेतनता नष्ट हो जाती है और उस समय मनुष्य का शरीर निश्चल हो जाता है ॥ ९३ ॥

रोगिणो जीवनसूचिकाया नाड्या लक्षणम्—

स्पन्दते चैकमानेन त्रिंशद्वारं यदा धरा।
स्वस्थानेऽपि तदा नूनं रोगी जीवति नान्यथा ॥ ९४ ॥

रोगी के जीवन को बताने वाली नाड़ी का लक्षण—जब रोगी की नाड़ी अपने स्थान पर एक मान (एक रूप) से तीस बार स्पन्दन करे तब वह रोगी अवश्य ही जी सकता है। यह अन्यथा नहीं हो सकता है ॥ ९४ ॥

अन्तर्जतज्वरलक्षणम्—

शरीरं शीतलं नाडी नूनं चोष्णतरा भवेत्।
ज्वरमन्तर्गतं तस्य जानीयाद्भिषगुत्तमः ॥ ९५ ॥

अन्तर्गत ज्वर का लक्षण—रोगी का शरीर यदि शीतल हो और नाड़ी अधिक उष्ण हो तो रोगी के अन्दर ज्वर है, ऐसा उत्तम वैद्य को जानना चाहिए ॥ ९५ ॥

मृत्यून्मुखनरस्य कर्त्तव्यतोपदेशः—

मृत्यून्मुखां धरां ज्ञात्वा न चिकित्सेद्गदातुरम्।
(रामनामौषधं तत्र कारयेत्पारलौकिकम्) ॥ ९६ ॥

इति श्रीरावणकृता नाडीपरीक्षा संपूर्णा।

मृत्यु के निकट पहुँचे हुए रोगी के सम्बन्ध में कर्तव्य—नाड़ी द्वारा रोगी को मृत्यु के समीप पहुँचे हुए समझ कर रोगी की चिकित्सा न करें। वहाँ पर राम नाम रूपी परलोक के लिए हितकारी औषध करें ॥ ९६ ॥

इति श्रीरावणकृत नाड़ीपरीक्षा की वैद्यश्रीइन्द्रदेव त्रिपाठी कृत
'वैद्यप्रभा' भाषाटीका समाप्त।



परिशिष्ट–१

यूनानी मतानुसार नाडी-विज्ञान

यूनानीमतेन नाड्या नामान्तरम्—

नाडी नामान्तरं नब्जं यूनानीवैद्यके मताः ।
विधास्ये तत्क्रमं चात्र वैद्यानां कौतुकाय च ॥ १ ॥

यूनानी मत से नाड़ी का नाम—यूनानी वैद्य (हकीम) नाड़ी को नब्ज कहते हैं। उस नब्ज का क्रम वैद्यों के कौतूहल के लिए कह रहा हूँ ॥ १ ॥

रूहस्य द्वैविध्यवर्णनम्—

हयवानी च नफसानी रूहद्वयमुदाहृतम् ।
हृदयस्थं शिरस्स्थं च देहीदेहसुखावहम् ॥ २ ॥

दो प्रकार के रूह का वर्णन—यूनानी मतानुसार रूह दो प्रकार की होती है—हयवानी और नफसानी। हयवानी हृदय में रहती है और नफसानी मस्तिष्क में रहती है। ये दोनों देह धारियों के लिये सुखदायी हैं ॥ २ ॥

रूहसम्बन्धितनाड्या द्वैविध्यवर्णनम्—

तत्संगतास्तु या नाड्यः शिरियानासवः क्रमात् ।
हृत्पद्मे यास्तु संलग्ना समन्तात्प्रस्फुरन्ति च ॥ ३ ॥

दो प्रकार की रूह सम्बन्धित नाड़ी का वर्णन—उस रूह से सम्बन्धित जो नाड़ियाँ हैं वे दो प्रकार की हैं—(१) शिरियान तथा (२) असव। इनमें शिरियान हृत्कमल में लगी रहती है उससे सर्वत्र स्फुरण प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

शिरोन्तर्मार्गसंबद्धास्ताभिश्चेष्टादिकं भवेत् ।
श्रेष्ठो जीवनिवासो हृद्राज्ञो राज्यासनं यथा ॥ ४ ॥

दूसरी असव नामक नाड़ी है जो शिरोऽन्तर्मार्ग अर्थात् मस्तक के भीतर लगी रहती है। इन नाड़ियों से देह की चेष्टा आदि होती है। जैसे राजा राज्य

सिंहासन पर स्थित होकर शोभित होता है उसी प्रकार जीव का श्रेष्ठ निवास-स्थान हृदय है ॥ ४ ॥

मणिबन्धे धमन्याः परीक्षणम्—

तद्भवा धमनी मुख्या मनुष्यमणिबन्धगाः ।
परीक्षणीया भिषजा ह्यङ्गुलिभिश्चतसृभिः ॥ ५ ॥

कलाई पर धमनी नाड़ी की परीक्षा—उन हृद्गत नाड़ियों में मनुष्य के पहुँचे की धमनी नाड़ी मुख्य है । उसको वैद्य चार अङ्गुलियों से मणिबन्ध के ऊपर रख कर परीक्षा करें। (आयुर्वेद शास्त्र में तीन अङ्गुलियों से नाड़ी की परीक्षा की जाती है, किन्तु यूनानी हकीम चार दोषों को चार अङ्गुलियों से देखते हैं) ॥५॥

पित्तविकृतौ नाड्याः गतिः—

यथैणगतिपर्यायस्तद्वदुत्प्लुत्य गच्छति ।
गिजाली गतिराख्याता पित्तकोपविकारतः ॥ ६ ॥

पित्तविकार में नाड़ी की गति—जैसे मृग का बच्चा उछल-कूदकर चलता है; उस प्रकार गति वाली नाड़ी को गिजाली कहते हैं । ऐसी नाड़ी की गति पित्त की विकृति से होती है अर्थात् पित्त दोष को यूनानी में "गिजाली" कहते हैं ॥ ६ ॥

वातविकृतौ नाड्याः गतिः—

तरङ्गनाम मौजः स्यात् मौजी गातरितीरिता ।
निवेदयति वर्ष्मस्थं वायोरुष्माणमेव च ॥ ७ ॥

वातविकार में नाड़ी की गति—यूनानी में जल की लहर को मौज कहते हैं उस मौज सदृशनाड़ी की गति को मौजी कहते हैं । यह शरीरस्थ वायु की उष्णता को बताती है ॥ ७ ॥

कफविकृतौ नाड्याः गतिः—

दूदः स्यात्क्रमि पर्यायो दूदी तस्य गतिः स्मृता ।
श्लेष्माणसंचयं चामं प्रकटीकुरुते हि सा ॥ ८ ॥

कफ विकार में नाड़ी की गति—दूद (कनसलाई आदि) क्रमि का नाम है। इसकी गति की सदृश गति को दूदी कहते हैं । यह नाड़ी की दूदी गति कफ के सञ्चय एवं आम दोष को प्रकट करती है ॥ ८ ॥

सद्यः म्रियमाणस्य नाड्याः लक्षणम्—

नमल्पिपीलिकामोर नमलो तद्गतिः स्मृता।
यस्य नाडी तथा गच्छेन्मृतिस्तस्याशु निर्दिशेत् ॥ ९ ॥

शीघ्र मरने वाले व्यक्तिकी नाड़ी का लक्षण—नमल् चींटी (कीड़ी) तथा मोर का नाम है। अतः इनके समान गति को नमली गति कहते हैं। जिस पुरुष की नाड़ी मोर तथा चींटी की तरह चले वह प्राणी जल्दी ही मर जाता है ॥९॥

शोथरोगिणो नाड्याः लक्षणम्—

असिपत्रस्य पर्यायो मिन्शार इति कीर्तितः।
यथास्यात्तत्क्रमः काष्ठे मिन्शारी सा गतिर्भवेत्।
तद्गतिं धमनी धत्ते बाह्यान्तः शोथरोगिणः ॥ १० ॥

शोथ रोगी की नाड़ी का लक्षण—यूनानी में आरे का पर्याय मिन्शार है। उसकी काष्ठ में जिस क्रम से गति होती है उस प्रकार की नाड़ी की गति को मिन्शारी गति कहते हैं। इस प्रकार नाड़ी की गति बाहर तथा अन्दर शोथ के रोगी की होती है ॥ १० ॥

पित्त-कफ विकृतौ नाड्याः लक्षणम्—

जम्बुलफारनाम्नी या गतिर्मूषकपूच्छवत्।
पित्तश्लेष्मप्रकोपेण धमन्याः सम्भवेत्किल ॥ ११ ॥

पित्त-कफ विकार में नाड़ी की गति—जो नाड़ी की गति मूषक के पूँछ के समान होती है उसको जम्बुलफार नामक नाड़ी की गति कहते हैं। यह नाड़ी की गति पित्त-कफ के प्रकोप से होती है ॥ ११ ॥

बलक्षये नाड्याः गतिः—

माली शलाका सदृशी सूक्ष्मा धीरा बलात्ययात्।
गत्याघातद्वयं यस्यामधस्तादंगुलिर्भवेत् ॥
जुलफितरत्तत्स्मृता पित्तश्लेष्मदग्धप्रबोधिनी ॥ १२-१३ ॥

बल के क्षीण होने पर नाड़ी की गति—जो नाड़ी की गति सलाई सदृश अत्यन्त सूक्ष्म तथा धीर गामिनी होती है उसे माली कहते हैं। ऐसी गति बल के क्षीण होने पर होती है। जो मध्य अङ्गुली के नीचे दो बार आघात करती हुई

प्रतीत होती है उसको जुलफितरत नाड़ी की गति कहते हैं। यह प्रकुपित पित्त-कफ को प्रकट करती है ॥ १२–१३ ॥

मलबन्धज्ञापिकाया वात-नाड्याः लक्षणम्—

मुर्त्तइश स्फुरन्ती या गतिः कोष्ठस्य रूक्षताम् ।
विड्ग्रहत्वं च सौदावी विचारान् ज्ञापयत्यपि ॥ १४ ॥

मलबन्ध (कब्ज) को बताने वाली वात (सौदा) नाड़ी का लक्षण—जिस नाड़ी के प्रस्फुरण से कोठे की रूक्षता प्रकट हो उसको मुर्त्तइश कहते हैं। इससे मलबन्ध (कब्ज) का ज्ञान होता है। इस प्रकार के लक्षण वाली नाड़ी की गति को सौदावी कहते हैं ॥ १४ ॥

पित्तवातविकृतौ नाड्याः लक्षणम्—

इर्तिशा कम्पपर्यायस्तद्विशिष्टा तु या भवेत् ।
मुर्तइश नाम सा ज्ञेया सफरासौदाविकारयुत् ॥ १५ ॥

पित्त-वात (सफरा-सौदा) विकार में नाड़ी का लक्षण—यूनानी में कम्पन को इर्तिशा कहते हैं। उसके समान जो नाड़ी की गति हो उसको इर्तिशा या मुर्तइश गति कहते हैं। इस प्रकार नाड़ी की गति सफरा (पित्त) तथा सौदा की विकृति होने पर होती है ॥ १५ ॥

रक्तस्य कफस्य च विकृतौ नाड्याः लक्षणम्—

मुम्तिला पूर्ति तूदिष्टाऽसुजोस्यां मुम्तिली तु सा ।
तमः कफादधोगा या मुन्खाफज सा प्रकीर्तिता ॥ १६ ॥

रक्त तथा कफ के विकार में नाड़ी की गति का लक्षण—यूनानी में परिपूर्ण (भरे हुए) को मुम्तिला कहते हैं। अतः जिस नाड़ी की गति से रक्त की परिपूर्णता प्रतीत होती है उस नाड़ी की गति को "मुम्तली" गति कहते हैं। जो नाड़ी तमोगुण या कफ से अधोभाग में गमन करे उसको "मुन्खफिज" कहते हैं ॥ १६ ॥

पित्तप्रकोप जन्याः नाड्याः लक्षणम्—

ऊर्ध्वमुत्प्लुत्य या गच्छेत्किञ्चिन्वायुप्रकोपतः ।
शाहेबुलन्द सा ख्याता धमनीसंपरीक्षकैः ॥ १७ ॥

पित्तप्रकोपजन्य नाड़ी का लक्षण—जो नाड़ी कुछ पित्त के प्रकोप से उछल-कूदकर ऊपर को चले उसको नाड़ी विज्ञाता वैद्य शाहेबुलन्द कहते हैं ॥ १७ ॥

दराज नाड्याः लक्षणम्—

चतुरङ्गुलिसंस्थानादपि दीर्घा तवील सा ।
दराज इति पर्यायस्तस्या एव निपातितः ॥ १८ ॥

दराज नाड़ी का लक्षण—जो नाड़ी चार अंगुल से भी लम्बी हो उसको तवीलसा कहते हैं। उस नाड़ी का दूसरा नाम दराज है ॥ १८ ॥

कसीरामीकारीजानां नाडीनां लक्षणम्—

परिमाणान्न्यून रूपा सा कसीर समीरिता ।
अमीक निम्नगा या च अरीज आयती स्मृता ॥ १९ ॥

कसीर, अमीक तथा अरीज नाड़ी का लक्षण—जो नाड़ी का परिमाण कहा गया है उससे कम हो तो उसको कसीर, अधोगामिनी नाड़ी को अमीक तथा चौड़ी नाड़ी को अरीज कहते हैं ॥ १९ ॥

दोषाणां सबलनिर्बलादिनिरूपणम्—

यथा गतिस्तु दोषाणां धत्ते प्राबल्यत्वहीनते ।
गलवे कसूर अरक्लात तारतम्येन निर्दिशेत् ॥ २० ॥

दोषों की सबल-निर्बल आदि नाड़ी का निरूपण—दोषों (वात, पित्त, कफ या सफरा, सौदा, बलगम तथा खून) की गति के अनुसार नाड़ी को बली तथा निर्बल समझना चाहिए। इसके बली तथा निर्बल आदि नाड़ियों को गलवे कसूर तथा अरक्लात तारतम्य से कहना चाहिए ॥ २० ॥

स्वस्थस्य निर्दोषनाड्याः निरूपणम्—

वाकअफिलवस्त निर्दोषः स्वस्थस्य परिकीर्तिता ।
इति संक्षेपतो नाडीपरीक्षा कथितां बुधैः ॥
विस्तरस्तु मया प्रोक्तो भाषायां जनहेतवे ॥ २१ ॥

स्वस्थ व्यक्ति की निर्दोष नाड़ी का निरूपण—स्वस्थ व्यक्ति के निर्दोष नाड़ी को "वाकि अफिलवस्त" कहते हैं। यह यूनानी मतानुसार संक्षेप में नाड़ी परीक्षा मैंने कही है। जनता के हित के लिये भाषा में विस्तारपूर्वक कहा गया है ॥२१॥

यूनानी मतानुसार नाड़ी गति का स्वरूप—

१ गिजाली (मृग)—
मृग के बच्चे के समान जो उछलता-कूदता (चञ्चल) चले उसको "गिजाली" कहते हैं। यह नब्ज की गति पित्ताधिक्य (सफरा) से होती है।

२ मौजी (तरंग)—
जो नाड़ी की गति जल की "तरंग" के समान गमन करे अर्थात् टेढ़ी-मेढ़ी चले उसको मौजी गति कहते हैं। यह गति तरी को सूचित करती है और वाताधिक्य (सौदा) से होती है।

३ दूदी (कृमि)—
जो नाड़ी कीड़े के समान मन्द-मन्द गमन करे वह कफ (बल्गम्) तथा आम दोष की अधिकता से होती है। इस नाड़ी की गति को "दूदी" कहते हैं।

४ मिन्शारी (आरा)—
जिस नाड़ी की गति लकड़ी पर आरा चलने की तरह खारदार प्रतीत होती है वह वाहर-भीतर सूजन को सूचित करती है। इसको "मिन्शारी" गति कहते हैं।

५ जनबुलफार (मूसे की पूँछ)—
जो नाड़ी की गती चूहे की पूँछ को तरह गमन करे उसको "जनबुलफार" गति कहते हैं और यह वात-पित्त के प्रकोप से होती है।

६ नुम्ली (मोर-चींटी)—
जो नाड़ी की गति चींटी और मोर की गति के समान हो उसे "नुम्ली" गति कहते हैं। ऐसी नाड़ी की गति मुमुर्षु (मरनेवाले) की होती है।

७ मतली (सलाई)—
जो नाड़ी सलाई के समान दोनों ओर पतली तथा मध्य में मोटी होकर गमन करती है उसको मतली गति कहते हैं। यह दुर्बलता को सूचित करती है।

८ मतरकी (हथोड़ा)—

जो नाड़ी की गति हथोड़े के समान अङ्गुलियों को बार-बार चोट के समान प्रतीत हो उस गति को "मतरकी" गति कहते हैं। यह अत्यन्त गर्मी का सूचक है।

९ जुल्फितरत (शा. का. समान)—

जो नाड़ी चलते-चलते रुक जाय उसको "जुल्फितरत" कहते हैं। यह दुर्बलता को सूचित करती है। यह नाड़ी की गति प्रायः शोक के समय होती है।

१० वाकअफिलवस्त (विषम टंकोर देना)—

जो नाड़ी की गति फड़कन के समय से पूर्व ही फड़क उठे उसे "वाकअफिलवस्त" गति कहते हैं। यह गति श्वासाधिक्य में होती है। किसी-किसी का मत है कि यह गति निर्दोष नाड़ी का सूचक है।

दोषाणां चतुर्विधित्वनिरूपणम्—

दोषः खिल्त इति प्रोक्तः स चतुर्धा निरूप्यते।
सौदा सफरा तथा वल्गम तूरीये खून उच्यते ॥ २२ ॥

चार प्रकार के दोषों का निरूपण—यूनानी में दोष शब्द को "खिल्त" कहते हैं। वह चार प्रकार का होता है। जैसे, सौदा, सफरा, वल्गम तथा खून ॥२२॥

चतुर्विध दोषाणां स्वरुपम्—

तत्र सौदा धरातत्त्वं रूक्षं शीतस्वभावतः।
पित्तमग्नेः स्वरूपं तु सफरा रूक्षमुष्णकम् ॥ २३ ॥
वल्गमवारिरूपं स्यात्सः कफः स्निग्धशीतलः।
अस्रं वायुः खून इति स्निग्धोष्णं तेषु तद्वरम् ॥ २४ ॥

आकाश-वायु	तेजस् (अग्नि)	अप्-पृथ्वी	वायु-तेज
|	|	|	|
वात	पित्त	कफ	खून

चार प्रकार के दोषों का स्वरूप—प्रत्येक दोष में दो-दो गुण होते हैं। सौदा (वात) में पृथ्वी तत्त्व अधिक है अतः सौदा स्वभाव से ही रूक्ष तथा शीत होता

है। सफरा (पित्त) में अग्नि तत्त्व विशेष है। सफरा (पित्त) उष्ण एवं रूक्ष होता है। बल्गम (कफ) में जल तत्त्व अधिक होता है; अतः बल्गम (कफ) में स्निग्ध तथा शीतल गुण होता है। खून (रुधिर) में वायु तत्त्व अधिक होने से स्निग्ध एवं उष्ण गुण होता है; अतः अन्य दोषों की अपेक्षा यह खून श्रेष्ठ कहा गया है॥ २३–२४॥

इम्बसात (बाह्यगति) के भेद।

१. तवील (दीर्घाकार)

मोंतदिल (समान)—

यदि नाड़ी चार अङ्गुल से थोड़ा भी न्यूनाधिक न हो, किन्तु सम हो तो सरदी-गरमी समान समझना चाहिए।

कसीर (ह्रस्व)—

नाड़ी चार अङ्गुल से कम हो तो सरदी का लक्षण समझना चाहिए। ऐसा पुरुष शीतप्रकृति का होता है।

तवील (दीर्घ)—

जो नाड़ी चार अङ्गुल से अधिक लम्बी हो तो गरमी का लक्षण समझना चाहिए। ऐसा पुरुष उष्णप्रकृति का होता है।

२. अरीज (स्थूलाकार)

अरीज (स्थूल)—

यदि नाड़ी तर्जनी अङ्गुली से लेकर कनिष्ठिका पर्यन्त स्थूल प्रतीत हो तो वह तर अर्थात् रक्त और कफ से होती है।

दैयक वाजीक (कृश)—

जो नाड़ी पतली प्रतीत हो उसको कृश कहते हैं। ऐसी नाड़ी वात तथा पित्त प्रकोप में होती है।

मोतदिल (समान)—

जो नाड़ी समान हो अर्थात् न कृश हो और न स्थूल हो तो उसमें शीतोष्ण समान होता है।

३. उमक (वहिर्गत्याकार)

मुशरीक उमक (वहिर्गत)—

जो नाड़ी अत्यन्त उछलकर अंगुलियों को स्पर्श करे तो उसमें उष्णता की अधिकता होती है।

मुनखफिज (अन्तर्गत)—

जो नाड़ी हद्द से कम ऊँची उठे अर्थात् धीरे से अंगुलियों को स्पर्श करे तो सरदीका द्योत है और गरमी की कमी होती है।

मोतदिल (समान)—

जो नाड़ी न बहुत उभरी हुई हो और न बिलकुल दबी हुई हो किन्तु समान हो तो उसमें गरमी होती है।

यूनानी मत के अनुसार नाड़ी की परीक्षा

यूनानी भाषा में नाड़ी को नब्ज कहते हैं। नब्ज का अर्थ धमनी का तड़फना है। वह तड़फन प्रत्येक की प्रकृति-देश, काल तथा अवस्था-भेद से समान नहीं होती, कुछ न कुछ भेद रहता ही है। एक बार स्वास्थावस्था की नाड़ी देखने के बाद रोगावस्था की नाड़ी देखी जाय तो उसकी नाड़ी का यथार्थ ज्ञान हो जाता है कि स्वस्थावस्था की नाड़ी से रुग्णावस्था की नाड़ी में कितना अन्तर है। नाड़ी-परीक्षा करने और नाड़ी-परीक्षा करानेवालों को सावधान एवं निश्चिन्त होने के बाद ही नाड़ी-परीक्षा प्रारम्भ करनी चाहिए। नाड़ी दिखाते समय किसी वस्तु का सहारा नहीं लेना चाहिए और न किसी वस्तु को पकड़े ही रहना चाहिए। यदि हाथ में पट्टी आदि वंधी हो तो खोल देना चाहिए। प्राचीन नाड़ीवेत्ताओं का यह विचार रहा है कि कनपटी, गुदा, टकने आदि आदि अनेक स्थानों की नाड़ी देख कर रोग का ज्ञान किया जा सकता है किन्तु उन स्थानों की नाड़ी मांसल प्रदेश में होने के कारण स्पष्ट ज्ञान करना कठिन हो जाता है। अतः नाड़ी देखने का समुचित स्थान मणिबन्ध (कलाई) ही होती है क्योंकि यहाँ की नाड़ी (धमनी) अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है। स्त्रियों की नाड़ी देखने की एक समस्या भी बन जाती है क्योंकि हाथ की नाड़ी के अतिरिक्त

अन्य अङ्गों की नाड़ी लज्जा के कारण नहीं देखी जा सकती। हाथ दिखाने में कोई संकोच नहीं होता है।

यूनानी में दो प्रकार के नाड़ी का वर्णन किया गया है—

(१) इम्बसात (बाह्यगति) : इम्बसात उस गति को कहते हैं जो फड़कन के साथ बाहर आकर अङ्गुलियों को स्पर्श करती है। जो पहले बतायी जा चुकी है।

(२) इन्किबाज (आभ्यन्तरगति) : इन्किबाज की गति में नाड़ी अङ्गुलियों को स्पर्श कर अन्दर की ओर प्रवेश करती हुई प्रतीत होती है।

यूनानी चिकित्सा-पद्धति में दोष को खिल्त कहते हैं और वह चार प्रकार का होता है। सौदा (वात), सफरा (पित्त), वल्गम (कफ) तथा खून। आयुर्वेद में तीन ही दोष मानते हैं उनके मत में खून दूष्य होता है। इसके ऊपर आयुर्वेद में बहुत विचार के बाद समाधान दूष्य पक्ष में ही हुआ है।

प्रत्येक दोष के दो-दो गुण होते हैं। सौदा (वात) में पृथ्वी तत्त्व अधिक होने के कारण स्वभाव से ही रूक्ष तथा शीतल गुण होते हैं। सफरा (पित्त) में अग्नितत्त्व अधिक होने के कारण रूक्ष तथा उष्ण गुण होते हैं। वल्गम (कफ) में जल तत्त्व के अधिक होने से स्निग्ध तथा शीतल गुण होते हैं। खून में वायु तत्त्व अधिक होने से स्निग्ध एवं उष्णगुण वाला होता है। अतः अन्य दोषों की अपेक्षा खून श्रेष्ठ होता है।

सौदा (वात) की नाड़ी ह्रस्व व पतली होती है और उसमें शीत तथा रूक्ष गुण होता है। सफरा (पित्त) की नाड़ी दीर्घ और पतली होती है तथा उसमें गरम और खुश्क गुण होता है। वल्गम (कफ) की नाड़ी ह्रस्व तथा मोटी होती है और उसमें शीत तथा तर गुण होता है। खून की नाड़ी दीर्घ व स्थूल होती है और उसमें गरमतर गुण होता है।

नाड़ी का बलाबल, विलम्ब, आकृति, प्रमाण, स्पर्श, साध्यासाध्यता एवं स्थिति के अनुसार नाड़ी का लक्षण—

१. नाड़ी का बलाबल :

सबल (शीघ्र धारिणी)—

जो नाड़ी अंगुलियों के मांस में वेग-जोर से धक्का देकर ऊँची उठ जावे तो हृदय को प्रबल समझे।

दुर्बल (मन्द चारिणी)—

यदि नाड़ी अंगुलियों को स्पर्श कर दब जाय तो हृदय को दुर्बल समझे।

मोतदिल (समता)—

जो नाड़ी न बहुत जोर से चले और न अत्यन्त धीरे-धीरे चले तो हृदय स्वस्थ समझे।

२. नाड़ी का विलम्ब होना :

सरी (समता)—

जो नाड़ी शीघ्र आवागमन करे तो शरीर में अधिक गरमी का द्योतक है।

वती (मन्द चारिणी)—

जो नाड़ी धीरे-धीरे चले वह शरीर में अधिक सरदी का द्योतक है।

मोअज्जिल (शीघ्र चारिणी)—

जो नाड़ी मध्यम चाल से चले वह सरदी-गरमी दोनों की समानता का द्योतक है।

३. आकृति :

नरम (मृदु)—

जो नाड़ी दबाने से आसानी से दब जाय उसको तर-स्निग्ध कहते हैं। फारसी में "लीन" कहते हैं।

सख्त (कठिन)—

जो नाड़ी दबाने से न दबे वह खुष्क होती है। फारसी में उसे "सख्त" कहते हैं।

मोतदिल (सम)—

जिसमें मध्यम गुण हो अर्थात् न मृदु हो और न कठोर हो उसको "मोतदिल" कहते हैं।

४. प्रमाण :

इतमला (रुधिर पूर्ण)—

जो नाड़ी मोटी तथा शीघ्र चलती हो उसको रक्तपूर्ण समझे।

खाली (स्वल्प रुधिर)—

जो नाड़ी खाली होती है वह मन्द और पतली होती है। उसमें थोड़ी रुधिर होती है।

मोतदिल (समता)—

जब नाड़ी न भरी हो और न खाली हो तो समान रक्त समझे ।

५. स्पर्श :

गरम (उष्ण)—

जिस समय नाड़ी का स्पर्श गरम प्रतीत हो तो रक्त में ज्वर या गरमी समझे ।

सरद (शीत)—

जिस समय नाड़ी में शीतलता प्रतीत हो तो रक्त में शीतलता समझे ।

मोतदिल (सम)—

जिस समय नाड़ी में शीत-उष्ण समान हों तो शीतोष्ण समान समझे ।

६. साध्यासाध्य :

उस्तवा (पूर्व सदृश)—

जो नाड़ी कम से कम पैंतिस बार फड़क कर ठहरे तो साध्य समझे ।

एख्तला (विपरीत)—

जो नाड़ी पैंतिस बार फड़कने में कई बार टूट जाय तो असाध्य समझे ।

मोतदिल (समता)—

जो नाड़ी अनेक बार न टूट कर एक-दो बार टूटे उसे साध्य समझे ।

७. स्थिति :

मुतवतिर (अत्यन्त)—

जो नाड़ी अंगुलियों को स्पर्श कर शीघ्र अन्दर चली जाय तो वह निर्बल नाड़ी है ।

मुतफावित (धैर्य)—

जो अंगुलियों को कुछ समय तक स्पर्श करे उसे बलवान् नाड़ी समझे ।

मोतदिल (समता)—

जो नाड़ी समान रूप से अङ्गुलियों को स्पर्श करे उसे स्वस्थ नाड़ी समझे ।

यूनानी मत से नाड़ी परीक्षा डॉ० इन्द्रदेव त्रिपाठी विरचित 'वैद्यप्रभा' भाषा-टीका समाप्त ।

—oo:o:oo—

परिशिष्ट–२

पाश्चात्त्य मत के अनुसार नाड़ी-परीक्षा का स्वरूप—

अंग्रेजी में नाड़ी को पल्स (Pulse) कहते हैं यह दो प्रकार की होती है। परोक्ष तथा अपरोक्ष नाड़ी। जो नाड़ी देखने वाले की अङ्गुलियों को स्पर्श न करे उसे परोक्ष और जो स्पर्श करे उसे अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) नाड़ी कहते हैं।

खड़े होने की अपेक्षा बैठने और बैठने की अपेक्षा सोने पर नाड़ी की गति घटती है। उसी प्रकार सायं-प्रातः नाड़ी की गति बढ़ जाती है और निद्रा में नाड़ी की गति घट जाती है।

अफीम, मद्य आदि गरम वस्तु के खाने पर नाड़ी की संख्या बढ़ जाती है। अत्यन्त शीतल वस्तु के खाने पर नाड़ी की संख्या न्यून हो जाती है। भोजन के समय नाड़ी का वेग मन्द हो जाती है।

पाश्चात्यमतेन वेगसंख्यातिक्रान्तनाड्याः नाम कथनम्—

आनन्दातितरावस्था स्वानन्दापेक्षया गतेः।
वेगसंख्याववर्द्धते सा नाडीफ्रीकेंटशब्दिता ॥ १ ॥

पाश्चात्य मत से अधिक वेग-गति संख्या वाली नाड़ी का नाम—सामान्य नाड़ी की अपेक्षा नाड़ी की संख्या अधिक वेगवान् हो तो फ्रीकेंट" (Frequent) कहते हैं। अर्थात् सामान्य नाड़ी की गति संख्या निश्चित है उससे अधिक होने पर "फ्रीकेंट" की संज्ञा होती है ॥ १ ॥

वेगसंख्यान्यूननाड्याः नाम कथनम्—

आनन्दातितरावस्था स्वानन्दापेक्षया गतेः।
वेगसंख्या ह्रसति सा नाडीन्फ्रीकेंटशाब्दिता ॥ २ ॥

कम गति संख्या वाली नाड़ी का नाम—सामान्य नाड़ी संख्या की अपेक्षा स्पन्दन संख्या कम हो तो उस मन्द चारिणी नाड़ी को इन्फ्रीकेंट (Infrequent) कहते हैं ॥ २ ॥

समसंख्याक नाड्याः नाम कथनम्—

चिरकालधृतायांश्च नाड्यां संख्या न वर्द्धते।
न वा ह्रसति वेगस्य सा च रेग्यूलराभिधा ॥ ३ ॥

सामान्य गति संख्या को बताने वाली नाड़ी का नाम—जब नाड़ी पर बहुत देर तक हाथ रखने पर भी कुछ न्यूनाधिक्य प्रतीत न हो उस नाड़ी को रेग्यूलर (Reguler) कहते हैं ॥ ३ ॥

विषमसंख्याकनाड्याः नाम कथनम्—

चिरकालधृतायांच नाड्यां संख्याविवर्द्धते।
मन्दी भवति चावस्था सेरेंग्यूलरशब्दिता ॥ ४ ॥

न्यूनाधिक गति संख्या को बताने वाली नाड़ी का नाम—बहुत देर तक नाड़ी पर हाथ रखने से नाड़ी की संख्या घटती-बढ़ती रहे तो उस नाड़ी को इरेंग्यूलर (Irreguler) कहते हैं ॥ ४ ॥

हृद्रोगज्ञापिकायाः नाड्याः नाम कथनम्—

सकृदंगुलिसंस्पर्शादन्तर्धानं तु गच्छति।
इन्टर्मिटेंन्टाभिधा साऽसृक्कफाशयदूषिणी ॥ ५ ॥

हृदय रोग को बताने वाली नाड़ी की नाम—जो नाड़ी एक बार अङ्गुली का स्पर्श कर छिप जाय वह रक्त एवं कफाशय को दूषित करनेवाली एवं हृदय सम्बन्धी रोग को उत्पन्न करनेवाली है। इसको इन्टर्मिटेन्ट (Intermittent) कहते हैं ॥ ५ ॥

रक्तपूर्णनाड्याः नाम कथनम्—

यदारक्तेन पूर्णत्वमापन्ना नाडीका भवेत्।
तथा फुलशब्दविख्याताऽथवा लार्जेति विश्रुता ॥ ६ ॥

रक्तपूर्ण नाड़ी का नाम—जो नाड़ी रक्त से परिपूर्ण होती है उस नाड़ी को फुल् या लार्ज (Ful or large) कहते हैं ॥ ६ ॥

हृदि रक्ताल्पनाड्याः नाम कथनम्—

यस्यां हृत्कमलोच्छ्वासाद् रक्तमल्पं वहेत् सा।
रिक्ता नाडी स्मालसंज्ञा समाख्याताङ्गलभाषया ॥ ७ ॥

हृदय में थोड़े रक्त को बताने वाली नाड़ी का नाम—जिस समय हृदय में रक्त अल्प होता है उस समय जो नाड़ी का स्पन्दन होता है उस रिक्त नाड़ी को स्माल (Small) नाड़ी कहते हैं ॥ ७ ॥

क्षीणनाड्याः नाम कथनम्—

या वै गुणवदातन्वी नाडी क्षीणत्वशंसिनी।
रक्ताल्पतां द्योतयन्ती सा थ्रेडीपल्ससंज्ञिता ॥ ८ ॥

क्षीण नाड़ी का नाम—जो नाड़ी धागे के समान बहुत सूक्ष्म प्रतीत हो वह क्षीणता एवं रक्ताल्पता को प्रकाशित करने वाली थ्रेडीपल्स (Thready Pulse) कहलाती है ॥ ८ ॥

कठिनगतिनाड्याः नाम कथनम्—

अङ्गुलीभिर्यदा नाडी पीडितापि न नम्रताम्।
व्रजेत्तदातिरूक्षत्वद्योतिनी हार्डशब्दिता ॥ ९ ॥

कठिन गति वाली नाड़ी का नाम—जो नाड़ी अंगुलियों से दबाने पर भी मृदु न हो उस रूक्षता को प्रकट करने वाली नाड़ी को हार्ड (Hard) नाड़ी कहते हैं ॥ ९ ॥

मृदुगतिनाड्याः नाम कथनम्—

अङ्गुलिभिर्यदा नाडी पीडिता नम्रता व्रजेत्।
सार्द्रत्वद्योतिनी मृद्वी साफ्टशब्देन शब्दिता ॥ १० ॥

मृदुगति वाली नाड़ी का नाम—जब नाड़ी अंगुलियों से दबाने पर दब जाय उस शीतलता को प्रकट करने वाली नाड़ी को मृदु साफ्ट (Saft) नाड़ी कहते हैं ॥ १० ॥

शीघ्रगनाड्याः नाम कथनम्—

प्रतिस्पन्दं शीघ्रतायां संख्या यस्या न वर्द्धते।
सकृच्छैघ्र्यधरा तूर्णगा नाडी क्किकशब्दिता ॥ ११ ॥

शीघ्र चलने वाली नाड़ी का नाम—जिस नाड़ी का स्पन्दन शीघ्र होते हुए भी संख्या न बढ़े किन्तु एक बार ही शीघ्रता करे उस शीघ्र गामिनी नाड़ी को क्कीक (Quick) नाड़ी कहते हैं। यह दुर्बलता का द्योतक है ॥ ११ ॥

मन्दगति नाड्याः नाम कथनम्—

यस्या मन्दगतिर्या च नाडी पूर्णा भवेत्तु सा ।
स्लोशब्दशब्दिता ज्ञेया रक्तकोपप्रकाशिनी ॥ १२ ॥

मन्द गति वाली नाड़ी का नाम—जो नाड़ी मन्द गति एवं परिपूर्ण हो वह रक्त के प्रकोप को प्रकाशित करती है उसे स्लो (Slow) नाड़ी कहते हैं ॥ १२ ॥

इति पाश्चात्यमतेन नाड़ीपरीक्षा समाप्ता ।

पाश्चात्य मतानुसार नाड़ी—

संस्कृत नाम	अंग्रेजी नाम	
१ शीघ्र चारिणी	Freuquent	फ्रीक्वेन्ट
२ मन्द गामिनी	Infreuquent	इन्फ्रीक्वेन्ट
३ सावधानता सूचक	Regulars	रेग्यूलर
४ असावधानता सूचक	Irregulars	इर्रेग्यूलर
५ सांतरिक	Intermittent	इन्टर्मीटेन्ट
६ परिपूर्ण	Full या Large	फुल या लार्ज
७ रिक्त	Small	स्माल
८ सूक्ष्मता	Thready pulse	थ्रेडी पल्स
९ कठिन	Hard	हार्ड
१० मृदु	Soft	साफ्ट
११ शीघ्र गामिनी	Quick	क्वीक
१२ धीर गामिनी	Slow	स्लो

छोटे बालक की नाड़ी की गति अधिक होती है। पुनः जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती है वैसे-वैसे नाड़ी की गति कम होने लगती है तथा वृद्धावस्था में नाड़ी की गति कुछ बढ़ जाती है। मध्यम श्रेणी के युवा पुरूषों की नाड़ी आरोग्यावस्था में कुछ भरी हुई सी होती है। फिर भी अवस्था एवं स्वभाव भेद से नाड़ी की गति में भिन्नता पाई जाती है।

अवस्था के अनुसार नाड़ी की गति—

अवस्था		गति प्रमाण
१४०	प्रति मिनट	सद्यः प्रसूत बालक
१२० से १३० तक	,,	दूध पीने वाले बालक
१००	,,	५ वर्ष से ६ वर्ष तक के बालक
९०	,,	१५ वर्ष के नव युवक
७० से ७५ तक	,,	३५ वर्ष तक
७०	,,	३५ से ७० तक वृद्धावस्था में
७५ से ८०	,,	अति वृद्धावस्था में

इस परिसंख्या में स्थिति के अनुसार न्यूनाधिक होता रहता है।

पाश्चात्य मत से नाड़ी-परीक्षा की डॉ० श्री इन्द्रदेव त्रिपाठी विरचित 'वैद्यप्रभा' भाषा टीका समाप्त।



(जयकृष्णदा... आयु

अ...

अरुणदत्तकृत सर्वाङ्गसुन्दरा तथा हेमाद्रिकृत

आयुर्वेदरसायन व्याख्याओं से संवलित

भूमिका—आचार्य प्रियव्रत शर्मा

भूतपूर्व अध्यक्ष, द्रव्यगुण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आयुर्वेद की बृहत्त्रयी में वाग्भटकृत अष्टाङ्गहृदय का विशिष्ट स्थान है क्योंकि यह चरक और सुश्रुत की परम्पराओं की विशेषताओं को समाहित करने के साथ-साथ अपनी मौलिक उद्भावनायें भी प्रस्तुत करता है। इसकी प्रामाणिक व्याख्याओं में अरुणदत्तकृत सर्वाङ्गसुन्दरा तथा हेमाद्रिकृत आयुर्वेदरसायन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। चिरकाल से इन व्याख्याओं के साथ अष्टाङ्गहृदय का संस्करण उपलब्ध नहीं होने के कारण शोधकर्ताओं एवं जिज्ञासुओं को बड़ी कठिनाई हो रही थी। इसी को दूर करने के लिए प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, विद्वत्समाज तथा आयुर्वेद के जिज्ञासु इसे अपना कर आयुर्वेद वाङ्मय के प्रचार-प्रसार को प्रोत्साहित करेंगे। (१९८२) १५०-००

(जयकृष्णदास आयुर्वेद ग्रन्थमाला ४०)

धन्वन्तरि निघण्टुः

सम्पादक एवं हिन्दी व्याख्याकार

आचार्य प्रियव्रत शर्मा तथा डा० गुरुप्रसाद शर्मा

आयुर्वेद के निघण्टु ग्रन्थों में धन्वन्तरिनिघण्टु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक विद्वान् इसे धन्वन्तरि द्वारा रचित या उपदिष्ट प्राचीनतम निघण्टु मानते हैं। खेद की बात है कि अभी तक इसका कोई शुद्ध संस्करण स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित नहीं हुआ। सम्प्रति तो यह अलभ्य ही है। ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को आयुर्वेदजगत् के समक्ष प्रस्तुत करने के उद्देश्य से यह संस्करण प्रकाशित किया गया है इसमें ग्रन्थ का पाठ शुद्ध रूप में दिया गया है तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ की हिन्दी व्याख्या विमर्श के साथ दी गई है। साथ में सभी द्रव्यों के लैटिन नाम, वानस्पतिक कुल, हिन्दी नाम आदि दिये गये हैं जिनसे द्रव्यों के परिचय में सहायता मिले। इस प्रकार धन्वन्तरिनिघण्टु का यह अद्वितीय संस्करण छात्रों, अध्यापकों तथा शोध कर्ताओं के लिए अत्युपयोगि सिद्ध होगा। (१९८२) ५०-००